सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनस्वामी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाईं-282002 (आगरा) उ.प्र.

प्रकाशन तिथि : 01.04.2018 मूल्य : एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 360/-

योग दिवस विशेषांक

वर्ष : 51; अंक : 3 जून 2018

पूर्णयोगी कौन ?

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दु:खं स योगी परमो मत:।।

हे अर्जुन! वह पूर्णयोगी है जो अपनी तुलना से समस्त प्राणियों की उनके सुखों तथा दु:खों में वास्तविक समानता का दर्शन करता है।

कृष्णभावनाभावित व्यक्ति पूर्ण योगी होता है। वह अपने व्यक्तिगत अनुभव से प्रत्येक प्राणी के सुख तथा दु:ख से अवगत होता है। जीव के दु:ख का कारण ईश्वर से अपने सम्बन्ध का विस्मरण होना है। सुख का कारण कृष्ण को मनुष्यों के समस्त कार्यों परम हितैषी मित्र समझना है। बुद्धजीव कृष्ण से अपने सम्बन्ध को भूल जाने के कारण तीन प्रकार के भौतिक तापों (दु:खों) को सहता है, और चूँकि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति सुखी होता है। चूँकि पूर्णयोगी कृष्णभावनाभावित बनने के महत्व को घोषित करता चलता है, अत: वह विश्व का सर्वश्रेष्ठ उपकारी एवं भगवान् का प्रियतम सेवक है।

न च तस्मान् मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तम: ।

(भगवद्गीता 18.69)

दूसरे शब्दों में, भगवद्भक्त सदैव जीवों के कल्याण को देखता है और इस तरह वह प्रत्येक प्राणी का सखा होता है। वह सर्वश्रेष्ठ योगी है क्योंकि वह स्वान्त:सुखाय सिद्धि नहीं चाहता, अपितु अन्यों के लिए भी चाहता है। वह अपने मित्र जीवों से द्वेष नहीं करता। यही है वह अन्तर जो एक भगवद्भक्त तथा आत्मोन्नति में ही रुचि रखने वाले योगी में होता है। जो योगी पूर्णरूप से ध्यान करने के लिए एकान्त स्थान में चला जाता है वह उस भक्त के तुल्य नहीं होता जो प्रत्येक व्यक्ति को कृष्णभावनाभावित करने का प्रयास करता रहता है।

●●●

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक : आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक : डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक : समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा– डॉ. विजय सिंह	12
4.	गुरु मंत्र में अतुलित शक्ति– जगदीश राय बंसल	15
5.	एके सधे सब सधै, सब साधे सब जाय– सूरजमल शर्मा	18
6.	पतिवृत योग– डॉ. जे.पी.शर्मा	20
7.	लक्ष्य– दासानुदास बालक पीयूषकान्त	25
8.	सांसों की लय में जीवन संगीत– श्री श्री रविशंकर का चिंतन	27
9.	सभी चिंताओं से मुक्त होना है योग– श्री श्री आनन्दमूर्ति	29
10.	योग की महिमा– डॉ. ऋषिराम शर्मा	30
11.	योगासनों द्वारा पूर्ण स्वास्थ्य–लाभ– ब्रह्मचारी शिवप्रसाद त्रिपाठी	36
12.	योग–आसन	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन	: रु.1000.00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 51
अंक 3

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

जून
2018

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वधियो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भ पश्यत जायमानं
स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु।।

–श्वेताश्वतरोपनिषद् 4/12

अर्थात्

जो रुद्र इन्द्रादि देवताओं को उत्पन्न करने वाला और बढ़ाने वाला है तथा जो सबका अधिपति और महान ज्ञानी (सर्वज्ञ) है। जिसने सबसे पहले उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भ को देखा था, वह परमदेव परमेश्वर हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करे।

विशेष लेख

वृत्ति सारूप्यमितरत्र

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो! हमारी वृत्तियाँ क्लेशमूलक तथा सुखमूलक भेद से दो प्रकार की हैं। क्लेशमूलक को क्लिष्टवृत्ति कहते हैं और जो वृत्ति भक्ति, ज्ञान, सुख एवं योग की ओर ले जायें उसे अक्लिष्ट वृत्ति कहते हैं। इनमें क्लिष्ट वृत्तियों के अन्दर अक्लिष्ट तथा अक्लिष्ट छिद्रों के अन्दर क्लिष्ट छिद्र रहा करते हैं। उनका भुगतान भी उसी क्रम से हुआ करता है। ब्रह्मपुरी (ऋषिकेश) के जंगलों में एक बार सुन्दरसिंह नाम का डाकू पहुँच गया। वहाँ एक योगिराज **'वीतराग विषयं वा चित्तम्'** के सिद्धान्त से भगवान शिव का ध्यान किया करते थे और इसके फलस्वरूप उनमें शाम्भवी शक्तियाँ हमेशा रहती थीं। वह डाकू कहीं से लूटपाट का सामान लाकर वहाँ छुपाने लगा। योगिराज ने पूछा—क्या तू इस धन को मुझे दे सकता है? वह कहने लगा—हाँ, महाराज! मैं इसे आप को दे सकता हूँ। योगिराज ने कहा उठा इस गट्ठर को अपने सिर पर ले और मेरे पीछे चले आओ'। वे दोनों गंगा किनारे पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर योगिराज ने सुन्दरसिंह से कहा—'अब तू इस गट्ठर को गंगा में फेंक दे'। सुन्दरसिंह ने झट से उस गट्ठर को गंगा जी में फेंक दिया। योगिराज ने पूछा—सब दे दिया तुमने मुझे? हाँ, महाराज! मैंने सब दे दिया। ऐसा कहकर योगिराज कहने लगे 'हमने भी तुम्हें सब कुछ दे दिया है।' ऐसा कहकर योगिराज ने उस पर शक्तिपात कर दिया और समाधि में बिठा दिया। समाधि तो उसकी लगने लगी किन्तु गुरुदेव के थपेड़े नहीं खाये थे। यम-नियमों का पालन नहीं किया था। इसलिये जब तक वह समाधि में रहा करता था तब तक तो **'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'** के अनुसार योग स्थिति में रहते थे किन्तु समाधि से उठते तो **'वृत्ति सारूप्यमितरत्र'** के नियमानुसार उसकी वृत्ति चोरी, डकैती करने वालों की जैसी ही रहती थी। एक बार वे हरिद्वार कुम्भ में आये उन्हें एक विशाल भण्डारा करना था। ध्यान में एक दान पुण्य करने वाले सेठ को देखा। अपने एक शिष्य को उनके पास भेजा। शिष्य ने सेठ जी से कहा—हमारे गुरु जी योगिराज का हुकुम है कि इतना कनस्तर घी इतनी बोरी चीनी भेज दें। सेठजी ने उसकी बात टाल दी, उपेक्षा सी कर दी। इस पर योगिराज ने प्राणाकर्षिणी विद्या से सेठ जी के प्राण खींचने शुरू कर दिये। इससे सेठ जी बलात खिंचे चले आये। उनके पास आकर अभिवादन करते हुये

अवहेलना की क्षमा माँगी और उन्हें अपेक्षित वस्तु उपलब्ध करा दी। इसका नाम है **'वृत्तिसारूप्यमितरत्र'** योगिराज सेठ जी को प्रेरणा भी कर सकते थे किन्तु ऐसा नहीं किया। **'सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि'** विद्वान व्यक्ति भी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है। उस डाकू के अन्दर योग शक्ति तो आ गई किन्तु वृत्ति के शुद्ध न होने के कारण उन्होंने इस प्रकार कठोर दण्ड देना चाहा। समाधि से उठने पर योगी लोग भी जैसी वृत्ति होती है, वैसी हरकतें करने लग जाते हैं। मैं तुम्हें यह बता रहा था कि क्लिष्ट वृत्ति के अन्दर (साथ) अक्लिष्ट तथा अक्लिष्ट के अन्दर क्लिष्ट वृत्ति रहा करती है। जैसे मानो कोई व्यक्ति यज्ञ कर रहा है, दान पुण्य कर रहा है किन्तु क्लिष्ट वृत्ति के बीच में आ जाने पर अहंकार आ गया, क्रोध आ गया, किसी विद्वान का अपमान कर दिया, किसी को पीट दिया या कोई और अपराध कर दिया तो वह कठोर वृत्ति बन जायेगी। जब उसके पुण्य का भुगतान होगा तो उस समय क्लिष्ट संस्कार भी बीच में आ जायेगा और उसको सुख के साथ दुःख भी मिलेगा। जैसे कोई राजा हो जाये या किसी को विपुल धन सम्पत्ति मिल जाये, हुकूमत मिल जाये; किन्तु बीच में उसे कुष्ठ हो जाये। उसे पुण्य के कारण तो इतनी धन सम्पत्ति मिल गई किन्तु क्लिष्ट वृत्ति के प्रवेश से दुःख भी मिला। इसी को कहते हैं अक्लिष्ट छिद्रों के अन्दर क्लिष्ट छिद्रों का रहना। अच्छे पुण्य प्रवाह के अन्दर, पाप का प्रवाह और पाप के प्रवाह के अन्दर पुण्य का प्रवाह। इस प्रकार (पुण्य) अक्लिष्ट तथा क्लिष्ट (पाप) वृत्ति के प्रवाह के अन्दर उत्थान पतन चलता रहता है। इसलिये सिद्धों की कृपा से या पुरुषार्थ से योग शक्ति तो आ जाती है किन्तु वृत्ति शोधन न होने के कारण योगी का पतन हो जाया करता है। इसलिये योग के ग्रन्थों में वृत्ति शोधन के लिये यम-नियमों के पालन की बात कही जाती है। साधन योग का अभ्यास भी आवश्यक होता है। एक मनुष्य श्रवण, मनन, निदिध्यासन रूप पुरुषार्थ करता है यह योगारूढ होने के लिये आवश्यक है। योगारूढ हो जाने पर फिर उसे कर्म नहीं करना पड़ता, उसे स्वतः शान्ति मिलती चली जाती है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को अपनी वृत्तियों के क्षय करने का उपाय बताते हुये कहा–

मयि मन आधत्स्व, मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

हे अर्जुन! तू अपने मन और बुद्धि को मुझ में लगा ले। देखो! छोटी ताकत बड़ी ताकत में लय हो जाया करती है। मन-बुद्धि तो कृष्ण चन्द्र के भी हैं किन्तु उनका मन अपने आधीन है। स्वाधीन रखकर अपने कार्य करते हैं। वे दिव्य हैं किन्तु हैं तो सही। जिन वस्तुओं का वैधर्म्य है वे परस्पर मिल नहीं सकते। साधर्म्य वस्तु मिला करती हैं। मन, मन में मिल सकता

है, बिन्दु सिन्धु में मिल जाया करता है। भगवान के मन में हमारा मन मिल सकता है। मैंने तुम्हें पिछले व्याख्यानों में संकेत किया था शायद तुम्हें याद होगा कि एक योगी ध्यान करता है अपने इष्टदेव का, भगवान राम, कृष्ण चन्द्र का, वीतरागी पुरुषों का। क्योंकि वे हमेशा समाधिस्थ रहते हैं इसलिये उनके ध्यान से समाधि जल्दी मिलती है। मैंने तुम्हें बताया था कि योगी अपना चित्त निर्माण कर सकता है किन्तु वह अपना ही चित्त तो बना सकता है राम का चित्त कैसे बनायेगा? कृष्ण का चित्त कैसे बनायेगा। मैंने ब्र० गोपालानन्द जी का उदाहरण देकर समझाया था कि यदि हम किसी के मन की बात जानना चाहते हैं तो इसके दो उपाय हैं। एक तो यह—हम उसके सूक्ष्म को बुला लें। स्थूल में तो हम बात छुपा लेते हैं। नहीं बताते अपने मन की बात दूसरे को। किन्तु जब योगी किसी के सूक्ष्म शरीर को बुलाता है तो वह सब बातें सच्ची-सच्ची बता देता है। सूक्ष्म पुतला भी स्थूल की तरह ही होता है। सूक्ष्म में बात छुपती नहीं है। किन्तु हम में ताकत कितनी है, क्या हम दूसरे के मन को खींच सकते हैं? यह देखने की बात होती है। बड़ी ताकत वालों को हम नहीं खींच सकते। मन के भावों को जानने का दूसरा तरीका है कि हम दूसरे के मन में मन को मिला लें, बुद्धि में बुद्धि को मिला लें तो जो कुछ दूसरा कर रहा है वह हमारे मन में भी आने लगेगा। भगवान के मन में मन तब मिल सकता है जब हमारे मन में प्रेम होगा, श्रद्धा होगी तो काम बनेगा। तुमने मीराबाई की बात सुनी होगी। वह भगवान कृष्ण की मूर्ति में समा गई थी। प्रेमपूर्वक यदि भगवान का चिन्तन करते हैं तो भगवान स्वयं अपना निर्माणित चित्त भेज देंगे। भगवान के महान तेजस्वी परमाणु हमारे मन के परमाणु को अपने में मिला लेंगे इसी से हमारी सबीज समाधि हो जायेगी। कृष्णचन्द्र की ताकतें उसमें आने लगेंगी। कृष्णचन्द्र की बात सबको समझ लेनी चाहिए।

अथ चिंत समाधातु न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो माभिच्छाप्तुम् धनंजय।।

अर्जुन! यदि तुम मन में मन नहीं मिला सकते हो तो प्रतिदिन इसका अभ्यास करो। हम तुम्हें रोज-रोज ध्यानाभ्यास करने के लिये कहते हैं। तीन घण्टे मेरूदण्ड को सीधा करके मंत्र जाप करने की आज्ञा देते हैं। यदि कोई तपस्वी है, स्वाध्यायशील है तो कुण्डलिनी ब्रह्मनाड़ी को छुएगी। पहले मन को स्वाध्यायशील होना चाहिए। नहीं तो शक्तिपात होने पर भी कुण्डलिनी वज्रा व चित्रिणी का स्पर्श करेगी। योगदर्शन में क्लिष्टाक्लिष्ट वृत्तियों को रोकने के लिये दो अभ्यास बताये हैं। अभ्यास और वैराग्य। यदि ध्यानादि नहीं कर सकते हो तो भगवान ने कहा **'मत्कर्म परमोभव'** मेरे लिये कर्म करो—**यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि।**

जो कुछ भी कर्म करते हो मेरे लिये करो। देखो! कृष्ण चन्द्र ने इतना सुन्दर रूप क्यों

बनाया? क्यों बासुरी बजाई? क्यों गोपियों को नचाया? इसका कारण एक था। वे ऐसी हरकतें करते हैं जिससे दूसरे उनके पीछे लग जायें। दूसरों को अपने पीछे लगाने से क्या फायदा? कृष्णचन्द्र को किसी के धन दौलत, रंगरूप की कोई आवश्यकता नहीं। क्यों नहीं? क्योंकि वे भगवान हैं।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
वैराग्यस्याथ मोक्षस्य षण्णां भगीतीङ्गना।।

अणिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य आदि अष्ट सिद्धियों के स्वामी हैं। योग की सिद्धियाँ ऐश्वर्य कहलाती हैं। श्री कृष्ण में है ये। तीनों लोकों का यश भगवान को प्राप्त है। वैराग्य और मोक्ष के भी वे ही स्वामी हैं। वीतरागी पुरुषों के ध्यान से स्वतः समाधि लग जाती है। ये सब साधन योग हैं। एक ही साधना के अभ्यास करने पर योगी को समाधि हो सकती है। किन्तु एक बात अवश्य है **'स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारा सेवितो** दृढ़भूमिर्भवति'। एक दो दिन में परिपक्वता नहीं आती। यदि देर तक न बैठा जाये तो शवासन में भी ध्यान लगाने की विधि है। शवासन में शरीर दुःखने लग जाये तो भी करवट न लें। यह भी ध्यानाभ्यास की विधि है। मैं तुम्हें **'वीतराग विषयं वा चित्तम्'** की बात बता रहा था। देखें! भगवान गणपति वीतरागी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सब वीतरागी हैं। आज्ञाचक्र में जो गुरु का ध्यान करता है वह प्रकृति के दायरे से आगे निकल जाता है और जहाँ उसको पहुँचना चाहिए वहाँ पहुँच जाता है।

शुभ सूचना

11 जून से 21 जून तक योग की क्रियाओं का नेति, धोति, वस्ती आदि षटकर्म एवं साधनों का विशेष अभ्यास कराया जायेगा। उत्तम प्रदर्शन करने वालों को पारितोषिक भी दिया जायेगा—

आचार्य श्री सिद्ध गुफा सवांई,
आगरा।

सम्पादकीय–

21 जून 2018 चतुर्थ विश्व योग दिवस पर विशेष

–आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज

श्री सिद्धगुफा संवाई (एत्मादपुर) आगरा योग प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में सुविख्यात है। आश्रम पवित्र गुफा की स्थापना अलौकिक शक्ति सम्पन्न योगी प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के द्वारा हुई है। यह सिद्ध गुफा सन् 1911 में बनाई गई थी। उस समय से इन महायोगी श्री रामलाल जी ने साधकों के लिए साथ ही रूग्ण लोगों के लिए भी आसन, प्राणायाम, जीवन तत्व साधन की क्रियाएं और षटकर्म के अभ्यास का क्रम प्रारम्भ कर दिया था।

जीवन तत्व साधन के अन्तर्गत नौ क्रियाएँ हैं। यह प्रभुजी की अद्‌भुत देन है। जिनमें सभी योगासनों का समुच्चय है। उस समय में नेति आदि क्रियाओं के विषय में जन सामान्य में कोई जानकारी नहीं थी। केवल आयुर्वेद के ग्रन्थों में वर्णन मिलता है। सिद्धगुफा संवाई आश्रम में नेति आदि षट कर्मों का अभ्यास कराकर रोगों का इलाज कराया जाता था और प्रभुजी योग अभ्यास के बाद साधकों को लौकी आदि कच्ची सब्जियाँ और भिगोई हुई (unboiled) दालें खिलाते थे। योग–ध्यान की उच्च स्थिति वाले अनेक साधक यहाँ रहकर साधना करते थे।

सन् 1940 के लगभग सिद्धगुफा संवाई पर प्रभु श्रीराम लाल जी महाराज के प्रमुख शिष्य योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज आ गये थे और प्रभुजी के निर्देशानुसार योग के प्रचार और प्रसार के इस अभियान को आगे बढ़ाया। आस–पास के क्षेत्रों में योग का प्रचार किया साथ ही भारत में विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण कर योग का व्यापक प्रचार–प्रसार किया, और असंख्य लोगों को योग की शिक्षा–दीक्षा देकर योग मार्ग पर अग्रसर किया। सिद्धयोग परम्परा शक्तिपात की परम्परा है। गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से दीक्षा प्राप्त कर अनेक साधकों ने योग की दिव्य अनुभूतियों का अनुभव किया और अन्यों को भी प्रेरित किया।

गुरुदेव से श्री राज नारायण ने भी दीक्षा ली थी। आपके आशीर्वाद से जनता पार्टी सरकार में राजनारायण स्वास्थ्य मंत्री बनाये गये। स्वास्थ्य मंत्रालय के अन्तर्गत ही योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा विभाग था। उसमें योग के प्रसार हेतु राज नारायण ने महाराज जी से प्रार्थना की। योग के क्रियात्मक पक्ष को आगे बढ़ाने के लिए योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी

महाराज को योग के तकनीकी विभाग का अध्यक्ष बनाया गया था। देश भर की योग संस्थाओं को भारत सरकार की ओर से अनुदान दिया जाता था, जिसकी संस्तुति अध्यक्ष के द्वारा ही होती थी। लगभग दो वर्ष गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी इस विभाग के अध्यक्ष रहे। उसी समय योजना बनी थी कि विद्यालयों में भी योग को एक विषय के रूप में सम्मिलित किया जाये। कालान्तर में धीरे-धीरे यह लागू हो रहा है। जिसका सूत्रपात उस समय किया जा चुका था। अब तो अनेक योग टीचर्स ट्रेनिंग संस्थान भी खुल गये हैं। अनेक संस्थानों एवं महाविद्यालयों में योग में एम. ए. तथा पी. एच. डी. आदि उपाधि हेतु अध्ययन की सुविधा है। जिसकी भूमिका पहले बन चुकी थी। राज नारायण ने स्वास्थ्य मंत्री रहते सर्व प्रथम आयुर्वेद के विकास हेतु भी योजनाएँ शुरू कराई थीं।

गुरुदेव ने योग विद्या को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से अनेक पुस्तकें प्रकाशित की जिनमें सचित्र, योगासन, जीवन तत्त्व साधन, नेतिक्रिया की पुस्तकें प्रकाशित कराई गईं और सामान्य जनता को सरल भाषा में योग के बारे में पुस्तकें उपलब्ध करायी गयीं। योगी गोपालानन्द जी ने सन् 1930 में नेति ट्रेक्ट नाम से पुस्तक उस समय प्रथम बार लाहौर से प्रकाशित कराई थी जिसमें नेति के अभ्यास से लाभान्वित हुए अनेक लोगों का वर्णन भी है। इनमें एक अंग्रेज का भी पत्र छपा है कि नेति क्रिया करने से उसकी जुकाम की गम्भीर समस्या दूर हो गई थी। यह पुस्तक अपने में अद्वितीय है। नेतिक्रिया पर इस प्रकार की कोई पुस्तक छपी नहीं है।

हमारे आश्रम में महापुरुषों के जन्म दिवस को आज से लगभग 50 वर्ष पहले ही योग महामेला के रूप में मनाया जाता रहा है। गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा प्रभु श्री रामलालजी महाराज का पावन जन्मोत्सव श्रीराम नवमी पर 'योग महा मेला' के रूप में मनाये जाने की परम्परा वर्तमान में भी चल रही है। यह परम्परा बहुत प्राचीन है इसी सन्दर्भ में संवाई के श्री अशर्फीलाल का प्रभुजी को भेजा गया पत्र भी मिला है जो डाक से भेजा गया था इसमें सन् 1913 में संवाई में योग महामेला मनाने की चर्चा की गई है। वर्तमान समय में अन्य संस्थानों में योग मेलों के आयोजन अब प्रारम्भ हुए हैं। जबकि हमारे आश्रमों में यह पुरानी परम्परा है। 'सिद्ध योग' पत्रिका के प्रकाशन को भी पचास वर्ष पूरे हो गये हैं। हमारे आश्रमों में साधकों या रोगियों से क्रियाएं सिखाने की कोई फीस नहीं ली जाती है। निःशुल्क ही सिखाने की परम्परा चली आ रही है। गुरुदेव ने स्त्री-पुरुष का भेद किये बिना सभी को योग विद्या सिखाई। विदेशी भी योग सीखने आये। अनेक साधक योग मार्ग की उच्च स्तरीय स्थिति को प्राप्त हुए।

सन् 1950-60 के दशक में श्री धीरेन्द्र ब्रह्मचारी जी और जम्मु कश्मीर वाले श्री हरिभक्त चैतन्य जी ने भी योग के प्रचार प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। श्री

हरिभक्त चैतन्य जी सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से दीक्षित बच्चे थे और धीरेन्द्र ब्रह्मचारी भी पूज्य गुरुदेव के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव रखते थे।

विश्व योग सम्मेलन

भारत में, देश की आजादी के बाद अनेक योग सम्मेलनों के आयोजन दिल्ली, कलकत्ता आदि स्थानों पर होते रहे हैं। जिनमें गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जी की महनीय भूमिका रही है। दिल्ली में सन् 1986 में 29, 30 व 31 दिसम्बर को विश्वयोग सम्मेलन आचार्य भगवान देव जी के द्वारा संयोजित कराया गया था जिसमें मुख्य सत्र की अध्यक्षता गुरुदेव जी ने की थी। उसी समय तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह ने गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को ''योग शिरोमणि'' की उपाधि से विभूषित किया। सन् 1986 से पहले भी अनेक विश्व योग सम्मेलन हुए हैं जिनमें गुरुदेव की विशेष भूमिका रही है। गुरुदेव ने जीवन पर्यन्त भारत का व्यापक भ्रमण कर योग मेलो तथा योग सम्मेलनों के आयोजन कराकर योग के प्रति आम आदमी में जिज्ञासा उत्पन्न करने हेतु वातावरण सृजन किया, संगीत (शास्त्रीय व उपशास्त्रीय) को प्रोत्साहन दिया। वर्तमान में प्रभुजी तथा गुरुदेव जी के नाम पर कई स्थानों पर संगीत विद्यालय भी चल रहे हैं।

सिद्धगुफा संवाई आश्रम परम्परा की अनेक शाखाएँ

श्री सिद्धगुफा संवाई योग आश्रम की अनेको शाखाएँ देश में योग प्रचार के कार्य में कार्यरत है और उल्लेखनीय प्रगति की है। योग की शिक्षा द्वारा लोगों के उत्तम स्वास्थ्य हेतु महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहा है। पंजाब व हरियाणा में तो इस परम्परा की शाखायें प्रायः हर शहर में स्थापित हैं। सन् 1930 में स्थापित योग साधन आश्रम रेलवे रोड ऋषिकेश; योग शिक्षण केन्द्र आर. के. पुरम सेक्टर–चार, दिल्ली; योग संस्थान राजाजीपुरम लखनऊ; इटावा (योग आश्रम व गऊशाला); सहारनपुर, फिरोजाबाद; करनाल, वाराणसी (मोहन सराय); मण्डी (हिमाचल प्रदेश); गंगापुर सिटी (राज.); घरौण्डा (पानीपत) आदि आश्रम उल्लेखनीय हैं। सैकड़ों की संख्या में आश्रम प्रायः सभी प्रमुख स्थानों पर कार्यरत हैं।

हमारी परम्परा के योग केन्द्रों की एक विशेषता यह भी है कि योग के सभी आठ अंगों (अष्टांग योग) पर जानकारी दी जाती है। योग के बहिरंग साधनों के साथ–साथ मन की शान्ति तथा आत्म लाभ के लिए ध्यान, धारणा व समाधि की भी शिक्षा दी जाती है। प्रतिदिन आश्रमों पर प्रातः व सायं आरती, गीता पाठ, आसन, प्राणायाम तथा नियमित रूप से ध्यान करने पर बल दिया जाता है। संवाई आदि आश्रमों में प्रतिदिन गीता पाठ की परम्परा है। गीता अनूठा योग शास्त्र है। जिसमें भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा कि अर्जुन योगी बनो। गुरुदेव का

निर्देश है कि प्रतिदिन नियत समय पर नियमित रूप से ध्यान में बैठना चाहिए। गुरुदेव द्वारा रचित ''योग सिद्धान्त'' ग्रन्थ में योग के विभिन्न पहलुओं और आयामों पर सुन्दर वर्णन है। गत पचास वर्षों से प्रकाशित 'सिद्ध योग' पत्रिका के माध्यम से भी जानकारी जन सामान्य को सुलभ कराई जा रही है।

गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने क्षेत्रों मे व्यापक भ्रमण कर योग प्रचार के कार्यक्रम चलाये। योग प्रचार कार्यक्रमों/ शिविरों की यह परम्परा वर्तमान में भी व्यापक स्तर पर चल रही है। प्रयाग राग (इलाहाबाद) में कुम्भ मेला/ माघ मेलों में योग शिविर, ऋषिकेश में गंगा दशहरा पर्व, प्रतिवर्ष गंगापुर सिटी, दतिया, ग्वालियर, घरौण्डा (करनाल) अलुपुर धाम, मण्डी (हि.प्र.) आदि अनेक स्थानों पर योग प्रचार कार्यक्रम चल रहे हैं। सोशल मीडिया में वाट्स एप ग्रुप, फेसबुक, वेबसाइट्स इन्टरनेट आदि का उपयोग करते हुए विशेष रूप से नई पीढ़ी के साधक सक्रिय हैं।

योग एवं विश्व शांति

आज दुनिया में वैज्ञानिक आविष्कारों की सुलभता और संसाधनों की प्रचुरता है। इसके बावजूद आज बड़ी संख्या में मनुष्य परेशान हैं। अवसाद, तनाव, चिड़चिड़ापन, असन्तोष और अशांति (Depression, Tension, Frustration) मे जी रहे हैं, बेचैन हैं। सोने के लिए नींद की दवा और भोजन पचाने के लिए भी दवाइयों की भरमार है।

इसके निवारण के लिए मनुष्य को योग के बहिरंग साधनों आसन, प्राणायाम क्रियाओं के साथ–साथ ध्यान का भी अभ्यास करना चाहिए। तथा यम–नियम का भी पालन जरुरी है। जियो और जीने दो (Live and let live) का सिद्धान्त सामने रखने पर व्यक्ति को शान्ति मिल सकती है। व्यक्ति को अपनी सोच सकारात्मक (Positive) और रचनात्मक (Constructive) रखने पर ध्यान देना चाहिए। अच्छी सोच के परिणाम भी अच्छे मिलते हैं। अब तो लोगों का यह विश्वास भी दृढ़ होने लगा है कि सकारात्मक सोच के साथ नियमित ध्यान करने से अती इन्द्रीय क्षमताओं का विकास हो सकता है।

आज सारा विश्व योग की ओर अग्रसर है। हर देश में योग की कक्षाएँ संचालित हो रही है। विश्व स्तर पर यह समझा गया है कि शारीरिक और मानसिक दोनों स्वास्थ्य के लिए योग की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सर्व सम्मति से यह निर्णय लिया कि 21 जून को पूरे विश्व में विश्व योग दिवस मनाया जायेगा। विश्व के सभी देशों में योग दिवस मनाने के साथ नियमित रूप से योग सिखाने और सीखने के प्रति दुनिया भर के लोगों में भारी उत्साह है और योग करने से सुदृढ़ परिणामों का अनुभव कर रहे हैं।

अवश्य ही विश्व में परिवर्तन आयेगा और योग विद्या का प्रकाश सभी को मिल सकेगा। योग का डंका पूरे विश्व में बज रहा है। यहाँ यह चर्चा करना प्रासंगिक है कि मैं गुरुदेव की आज्ञा से 1973 से ऋषिकेश आश्रम में सेवा में रहा। ऋषिकेश में उत्सव के प्रारम्भ में नगर कीर्तन/प्रभात फेरी की परम्परा है। स्वयं गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज प्रभात फेरी में भाग लेते उस समय यह गीत भी सुनाया जाता था ''उठो सोने वालों उठाने वाले आ गये, योग का डंका बजाने वाले आ गये।'' और आज हम स्वयं देख रहे हैं कि उनकी संकल्प शक्ति का परिणाम सामने है दुनिया भर में योग का डंका बज रहा है। अतः सद्‌गुरु की आज्ञा का ध्यान रखे कि योग ही दिव्य और अविनाशी जीवन है। योग जीवन जीने की कला और विज्ञान है। अपने जीवन में योग अवश्य ही अपनाना चाहिए।

योग दिवस पर विशेष

समत्वं योग उच्यते

गीता में समत्व को ही योग कहा गया है। समत्व सर्वप्रथम शरीर को समतावस्था में रखा जाये सीधा एव समान रेखा में रखा जाये। दूसरे नम्बर पर प्राणों को समतावस्था में रखा जाये। प्राण विचलित न हो इसकी गति सम रहे डावाडोल न रहे। सामान्य व्यक्ति का मन डावाडोल रहता है। काम, क्रोध, लोभ इसे समतावस्था में नहीं रहने देते अतः आवश्यक है उसे समतावस्था में रखे। प्राण के समतावस्था में आ जाने पर मन अपने आप एकाग्र होने लगता है। विचलित नहीं होता। समतावस्था ही समाधि का जनक है। लाभ-हानि सुख दुःख जीवन मरण हर अवस्था में मन को समता में बनाये रखना ही योग की स्थिति कहलाती है इसके बाद बुद्धि की स्थिरता की बात आती है। जिसे गीता में बुद्धि की स्थिरता रूप समाधि बताया है यही स्थिति प्रज्ञता भी है और यही वास्तविक योग है। आसन आदि क्रियायें आध्यात्मिक लाभ तो देती है किन्तु इस मार्ग के साधकों को ही लाभ होता है। अधिकतर लोग योग को भोग के लिये ही करते हैं।

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्या

डॉ. विजय सिंह

भगवान की योग माया का प्रभाव जन्म लेने के पूर्व से ही प्रकट हो गया था। देवकी जी के सातवें गर्भ को रोहणी जी के गर्भ में स्थानान्तरित करना, भगवान के जन्म के समय बेड़ियाँ, कारागार के बड़े-बड़े कपाट स्वतः खुलना, सभी का अचेतवत् निद्रा में चले जाना। गोकुल में पूतना को मोक्ष देना आदि योगैश्वर्य शिशु-शरीर से ही किया गया।

सातवें अध्याय में भगवान को मारने आये असुर शकट एवं तृणावर्त के उद्धार की कथा है। परीक्षित जी के विनम्र आग्रह पर श्री शुकदेव जी श्रीकृष्ण की शिशु-लीला का वर्णन करते हैं।

एक बार श्रीकृष्ण के करवट बदलने का उत्सव मनाया जा रहा था। घर में बहुत सी स्त्रियाँ गाना बजाना कर रही थीं। श्रीकृष्ण को एक छकड़े के नीचे पालने में सुला दिया था। उधर यशोदा जी मंत्रज्ञों, स्त्रियों के आव-भगत में व्यस्त थी अतः उन्हें श्रीकृष्ण के जगने रोने की आवाज सुनायी नहीं दी। भगवान के पाँव नन्हें लाल-लाल थे। वे मचलते हुये पैर से छकड़े को पाँव लगा दिया। वह विशाल छकड़ा उलट गया। उस छकड़े पर रखे गोरस की मटकियाँ सब-की सब टूट-फूट गयीं। छकड़े के पहिये अस्त-व्यस्त हो गये, उसका जुआ फट गया। सभी के सभी यह घटना देखकर व्याकुल होकर कहने लगे यह छकड़ा अपने आप कैसे उलट गया? वहाँ खेलते हुये गोप बालकों ने कहा-इस कृष्ण ने ही रोते-रोते अपने पाँव की ठोकर से उलट दिया। इस बात पर किसी को विश्वास नहीं हुआ। नन्दबाबा-यशोदा ने ग्रह आदि का उत्पात समझ कर शान्ति पाठ कराया। यशोदा जी अपने लाल को स्तन पान कराने लगीं।

एक दिन की बात है, यशोदा जी अपने लल्ला को गोद में लेकर दुलार रही थीं। सहसा श्रीकृष्ण चट्टान के समान भारी बन गये वे उनका भार न सह सकीं। उन्होंने श्रीकृष्ण को पृथ्वी पर बैठा दिया। वे इस घटना से स्वयं चकित थीं वे घर के काम में लग गयी-

एकदाऽऽरोहमारुढं लालयन्ती सुतं सती।
गरिमाणं शिशोर्वोढं न सेहे गिरिकूटवत्।। 18।।

(अ. 7 स्क. 10 पूर्वार्ध:)

कंस का निजी सेवक तृणावर्त दैत्य था। वह बवंडर के रूप में गोकुल में आया। बैठे हुये

श्रीकृष्ण को उठाकर आकाश में ले गया। उसके भयंकर शब्द से एवं धूल से गोकुल ढक गया। यशोदा जी श्रीकृष्ण को जहाँ बैठा गयी थी वहाँ नहीं पाकर शोक से व्याकुल हो उठीं।

इधर तृणावर्त बवंडररूप से जब भगवान श्रीकृष्ण को आकाश में उठा ले गया, तब उनके भारी बोझ को झेल सकने में अक्षम पाकर उसका उर्ध्व गति रुक गया। श्री बालकृष्ण ने उसका गला ऐसा पकड़ा हुआ था कि वह राक्षस चाहकर भी शिशु को अपने से अलग नहीं कर सका। असुर के प्राण पखेरू उड़ गये और बालक कृष्ण के साथ ब्रज में गिर पड़ा। भगवान कृष्ण उसके छाती पर लटक रहे थे। यह देख गोपियाँ विस्मित हो गयीं। दौड़कर कृष्ण को उठा, उन्हें माता को दे दिया। यशोदा जी, नन्दबाबा सभी को अपार आनन्द हुआ। सच है, साधु पुरुष अपनी क्षमता से ही सम्पूर्ण भयों से बच जाता है **''साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते''**।

इन्हीं दिनों यशोदा जी बालकृष्ण को स्तन पान करा रहीं थीं। प्रायः दूध पी चुके बालकृष्ण को जँभाई आ गई और माता ने उनके मुख में देखा—आकाश, अंतरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ, वन और समस्त चराचर प्राणी मुख में स्थित हैं। माता यशोदा डर कर काँपने लगीं और नेत्र बन्द कर लिये। वे आश्चर्यचकित हो उठीं—

खं रोदसी ज्योतिरनीक माशाः
सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च।
द्वीपान् नगांस्तद्दुहितृर्वनानि
भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि।।36।।
सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन् संजातवे पथुः।
सम्मील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत् सुविस्मिता।।32।।

(अ. 7 स्क. 10 पूर्वार्ध)

यशोदा जी ने भगवान के मुख में चराचर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को विराट भाव में देखा। वे सोचने लगीं कि यह कोई स्वप्न है या भगवान की माया? या मेरी बुद्धि में ही कोई भ्रम तो नहीं हो रहा। सम्भव है इस बालक में ही कोई जन्मजात योगसिद्धि है—

किं स्वप्न एतदुत देवमाया
किं वा मदीयो बत बुद्धिमोहः।
अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य
यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः।।40।।

यह सब देखकर सोचने लगीं—जो चित्त, मन, कर्म और वाणी के द्वारा सुगमता से

अनुमान नहीं लगाया जा सकता, यह सारा विश्व जिनके आश्रित है, जिनकी सत्ता व प्रेरणा से यह प्रतीत होता है, जिनका स्वरूप अचिन्त्य है, उन प्रभु! को मैं प्रणाम करती हूँ। मैं उन्हीं के शरण में हूँ। जब यशोदा माता श्रीकृष्ण तत्व समझ गयीं, तब भगवान ने वैष्णवी योगमाया का संचार उनके हृदय में कर दिया। यशोदा जी तुरन्त वह घटना भूल गयीं। वे पुनः पुत्र भाव से कृष्ण का लाड़–दुलार करने लगीं। सारे वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग और भक्तजन जिनके महिमा का गान करके तृप्त नहीं होते उन्हीं भगवान को यशोदा जी अपना पुत्र मानती थीं–

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्य योगैश्च सात्वतैः।
उपगीयमानमहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम्।।45।।

(अ. 8 स्क. 10 पूर्वार्ध)

परिक्षित जी ने भगवान शुकदेव जी से पूछा–प्रभो! ऐसा कौन सा कारण था कि नन्दबाबा और यशोदा जी को पुत्ररूप में सुख देने स्वयं भगवान उनके पास रहे? श्री शुकदेव जी ने कहा–राजन! पूर्वजन्म में नन्दबाबा एक श्रेष्ठ वसु थे। उनका नाम था द्रोण और पत्नी का नाम धरा था। उन्होंने ब्रह्माजी के आदेशों का पालन करने की इच्छा से कहा–भगवन्! जब हम पृथ्वी पर जन्म लें, तब जगदीश्वर भगवान कृष्ण में हमारी अनन्य प्रेममयी भक्ति हो। ब्रह्मा जी ने कहा–तथास्तु! ऐसा ही होगा। ब्रज में नन्द के रूप में द्रोण पैदा हुये उनकी पत्नी धरा ही यशोदा जी हैं। परीक्षित्! अब इस जन्म में भव चक्र से छुड़ाने वाले भगवान् उनके पुत्र हुये जिनके प्रति दोनों का प्रेम अपार था।

देखो! ब्रह्मा जी के वचन को सत्य करने के लिये भगवान श्री कृष्ण बलराम जी के साथ ब्रज में रह कर समस्त ब्रजवासियों को अपनी बाल–लीला से आनन्दित करते रहे–

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं ब्रजे विभुः।
सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया।।52।।

(अ. 8 स्क. 10 पूर्वार्ध)

॥ श्री रामलाल प्रभवे नमः॥

गुरु मन्त्र अतुलित शक्ति

जगदीश राय बंसल 'अधम्' 9212434003

सवाई धाम आश्रम में जन्म अष्टमी शुभ पर्व के चलते प्रातः स्मरणीय अनन्त विभूषित योग योगेश्वर गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने मानव उत्थान हेतु अपने श्री मुखारविन्द से पुलकित किया ''कि देखो लल्ला गीता में अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने महात्मा अर्जुन से कहा था कि शरीर धारी प्राणियों में मानव योनि अति दुर्लभ है और यह एक मात्र मानव योनि ही कर्म योनि है। जो साधक अपनी उत्कृष्ट लगन से भगवान के मन में मन, बुद्धि में बुद्धि लगाते हैं, अनन्य प्रेम से भजन कीर्तन गुणगान करते हैं, वे कदापि भगवान से दूर नहीं हैं। इन साधकों में से भी जो साधक अनवरत अपना गुरु मन्त्र करते हैं वे कर्म काण्डियों और ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ हैं। तात्पर्य यह है कि गुरु मन्त्र करने वाला साधक यज्ञ, तप और दान आदि में जो पुण्य कहा गया है, उन सब को लांघ जाता है और सद्गति को प्राप्त होता है। मेरा कहने का तात्पर्य है कि यदि सिद्धों के दर्शन और कृपा चाहते हो तो खूब स्वाध्याय करो। अन्तःकरण शुद्ध हो जाने पर सिद्ध लोग स्वयं उस साधक की आँखों के सामने आया करते हैं।

मैंने तुम्हें कई बार अपने एटा के बच्चे डा. फतेह सिंह और दिल्ली के ओमप्रकाश की शुभगति का वर्णन किया है। मेरे बच्चे राजनारायण ने गुरुमन्त्र करते–करते शरीर छोड़ा और सद्गति को प्राप्त हुआ। गांव अलुपुर के मेरे बच्चे खुशीराम को मन्त्र जप से अपनी मृत्यु का ज्ञान हो गया था, उसने सब को बता दिया था। उस दिन वह नित्य कर्म कर नए वस्त्र धारण कर लेट गया। उसे अनुभव हुआ कि भगवान श्रीकृष्ण आ रहे हैं, ...स्वर्ग से अप्सराएँ आ रही हैं..... बोला–माँ इनको दूध पिलाओ.....माँ छत फोड़ दो.....देखो माँ श्रीकृष्ण के विमान में कितनी रोशनी है.....माँ मैं श्रीकृष्ण के रथ में जा रहा हूँ.....। कहते–कहते प्राण निकल गए। उस समय श्रीप्रभूजी ने मुझे स्पष्ट कहा था कि इसे रोको टोको मत, यह बैकुण्ठ वासी हो रहा है''.....अस्तु।

प्रस्तुत लेख में इसी प्रकार का एक कृपा प्रसंग है, जो श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम से पूर्ण निष्ठा रखने वाले आराध्य देव के विशेष कृपा पात्र 84 वर्षीय श्री शर्मा जी ने होली पर्व दिनांक एक मार्च 2018 को सवाई में इस प्रकार बतलाया कि– (शर्मा जी नाम ख्याति के पक्ष में नहीं हैं) एक बार मेरी सहधर्मी बीमार हो गई। भोजन करते समय खाना कण्ठ में अटक जाता था। हम सृष्टि पालक जी की शरण में आश्रम आए। गुरुदेव जी ने आदेश दिया कि लल्ली शीतली

प्राणायाम (जबां गोल कर के) किया करो। प्रभू जी सब ठीक करेंगे। हमने प्रार्थना की कि गुरुजी हमने इसका स्थानीय अस्पताल में आपरेशन कराया था, मगर सफल नहीं हुआ। चिकित्सकों ने कैंसर बता कर टाटा मैमोरियल अस्पताल, मुम्बई रैफर कर दिया। इस बात पर त्रिकाल दर्शी जी एक नए ही अन्दाज में कह उठे कि लल्ली......जा.....जा.....। इस जा जा का भावार्थ मुम्बई या कहीं भी नहीं जाने से था। सब जानते हैं कि महात्माओं अथवा सिद्धों की भाषा की गहराई का मिठास, अनुवाद में नहीं लिखा जा सकता। मगर गहना कर्मणोगति के अनुसार मेरा लड़का माँ ममता की खुमारी में इतना डूब गया कि किसी का सुझाव उसके गले नहीं उतरा, बोला–

मेरे गुनाहों को माफ कर देती है माँ
बहुत गुस्से में हो तो भी प्यार देती है माँ
इसके लबों पै हमेशा दुआ होती है,
आप क्या जाने ऐसी होती है माँ।

परिणामत: लड़का–बहू अपनी बीमार माँ को लेकर मुम्बई के लिए रेलगाड़ी द्वारा रवाना हो गए। यह गुरु आज्ञा का उल्लंघन कहा जाए तो अतिश्योक्ति न होगी। देखिए, उनके गन्तव्य तक पहुँचने से पहले ही यकायक श्रीमति जी की तबीयत सीरियस हो गई। लड़का बोला माँ गुरुमन्त्र करती रहो, हम भी गुरुमन्त्र करते हैं। इस प्रकार गुरुमन्त्र करते–करते चलती रेलगाड़ी में ही श्रीमती जी का शरीर छूट गया।

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच तत्व यह अधम शरीरा।।

आश्चर्य–महान आश्चर्य। मेरे लड़के ने अपनी खुली आँखों से देखा कि आकाश मार्ग से रथ आ रहा है–रथ में मोर मुकुट धारी श्रीकृष्ण भगवान विराजमान हैं–रथ में माता श्री मुकुट धारण किए बैठी हैं–रथ में सफेद अश्व जुते हैं–माता जी आशीर्वाद दे रही हैं–रथ में प्रकाश ही प्रकाश है–मानों एक साथ कई सूर्य उदय हो गये हैं–रोशनी की चकाचौंध में साफ–साफ दिखाई नहीं दे रहा है....इत्यादि।

आगे चल कर जिस स्टेशन पर रेलगाड़ी ने विश्राम लिया, उसी स्टेशन पर उन्होंने रेलगाड़ी छोड़ दी और प्लेटफार्म के एक साइड पर डेरा डाल लिया। मौसम खराब था घनघोर घटा बरस रही थी। रह–रह कर बिजली कड़क रही थी। वायु मनोबल बहा रही थी। जबाँ गुरु स्तुति उचार रही थी।

दया करो गुरुदेव, हम पर दया करो
मैय्या गई कृष्ण रथ में, देह संस्कार करो।

कहीं जाने से आपने मना किया था
माँ ममता ने मुझको बाध्य किया था
भूल-चूक सगरी माफ करो....... (1)
केहि विधि हम घर को जाएं
माता का दाह संस्कार कराए
आकर कुछ प्रबन्ध करो..... (2)
सुन कर करुणा पुकार गुरु जी आते हैं
बिगड़े बना दें काम जब लल्ला बुलाते हैं।।

चमत्कार-महान चमत्कार! भीड़ को चीरता हुआ एक धोती कुर्ते वाला सज्जन लड़के के निकट आ कर बोला-

संकट को देख वीर घबराया नहीं करते।
कुछ ऐसे फूल हैं जो मुरझाया नहीं करते।।

इस डैड बोडी को पास में ही हमारे घर रखो, तब तक मैं कुछ प्रबन्ध करवाए देता हूँ। दयालु की दया से मौसम से बेपरवाह एक वाहन आया और हम उस सर्वमान, गुरुदेव की असीम कृपा से अपने घर पहुँच गए। फिर आनन फानन में-

निकला गुरु मुखी का जनाजा गुरुमन्त्र के बल पर।
बिहारी जी लेने आया विमान सज धज कर।।

अन्तिम संस्कार के समय मेरे पुत्र ने पुनः वही दृश्य देखा कि चमकीला रथ आ रहा है-भगवान श्रीकृष्ण रथ में विराजमान है-माताश्री बैठी है-आशीर्वाद दे रही हैं- प्रकाश ही प्रकाश है-इत्यादि।

यद्यपि सर्वव्यापि क्षण-क्षण पल-पल के ज्ञाता सब कुछ जानते ही हैं फिर भी मैंने अपनी अल्पबुद्धि से गुरुदेव के श्री चरणों में पत्र द्वारा सब दृश्य निवेदित किया, कोटि-कोटि आभार, ...नमस्कार......। प्रत्युत्तर में कृपालु जी ने कृपा पत्र भेजा कि लल्ला श्री प्रभू जी ने लल्ली को दुर्लभ गति दी है जो सर्व सुलभ नहीं होती। यह उसके गुरु मन्त्र का प्रति फल है। आशीर्वाद।

गुरु मन्त्र जपा करो-चरणों में शीश झुकाया करो।
पद्चिन्हों पर चला करो-गुरु रंग में रंगा करो।।
आश्रम के कर्म कमाया करो-मंगला आरती गाया करो।
अधम को महिमा सुनाया करो-योग पत्रिका पढ़ा करो।।

जय गुरु देव

एके सधे सब सधै, सब साधे सब जाय

सूरजमल शर्मा, रोहतक (हरि.)

मनुष्य जन्म लेते ही पारिवारिक, धार्मिक, सामाजिक आदि परिस्थितियों में घिरा रहता है। ज्यों–ज्यों वह बड़ा होता है, उसको परिवार के खान–पान, रहन–सहन व बोलचाल की भाषा का ज्ञान होता है। जैसे–जैसे वह देखता है, सुनता है, उसके मस्तिष्क पर प्रभाव बनने लगता है, बार–बार के अभ्यास से उसके विचार दृढ़ हो जाते हैं। परिवार की आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक अवस्था अनुसार उसका विकास होता रहता है। जीवन का उद्देश्य परिस्थितियों से ऊपर उठकर ही आगे बढ़ना है।

समाज में धार्मिक मान्यताएँ अलग–अलग क्षेत्र में अलग–अलग होती हैं। लेकिन दूसरों के बहकावे में आकर या सुनी सुनाई धार्मिक मान्यताएँ अपने पर लागू करना ज्यादा प्रभावशाली नहीं होता जब तक कई वर्षों तक अभ्यास नहीं किया जाता है। सामाजिक कहावत है–लुढ़कते पत्थर को कभी काई नहीं लगती, ठेठ पड़ा पत्थर भारी।

जमना गये जमनादास, गंगा गये गंगादास

जब तक आप एक अच्छी विचारधारा को नहीं अपनाओगे तो लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती। योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन गुरुदेव महाराज जी ने अपने प्रवचनों में कहा है अविद्या के कारण ही संसारी जीव भटकते फिरते हैं, लक्ष्य स्पष्ट न होने के कारण जीवन में सफल नहीं हो पाते हैं। केवल मात्र योग का जिज्ञासु ही कर्मकाण्ड के विषय से आगे निकल जाता है और जो लोग योग सिद्धान्तों को समझ करके गुरुदेव महाराज जी के बतलाये मार्ग के अनुसार शास्त्रविधि से योगाभ्यास करते हैं उनके परम कल्याण में शंका ही क्या हो सकती है।

जो लोग आत्मा को मरा हुआ और मरने वाला जानते हैं वे यथार्थता को नहीं जानते, क्योंकि यह आत्मा न तो कभी जन्मता है और न ही मरता है। यह तो अजर–अमर है शरीर के मर जाने पर कभी नहीं मरता है। जो लोग इस आत्मा को नित्य अजर–अमर एवं शाश्वत जानते हैं वे ही ज्ञानी हैं। उपरोक्त प्रवचन गुरुदेव महाराज अखण्ड–ब्रह्माण्ड नायक, काल चक्र, युग चक्र को एक ही इशारे पर घुमाने वाले ने बार–बार दोहराया है।

मन की चंचलता को भगवान श्रीकृष्ण जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि हे अर्जुन निश्चय ही मन बहुत चंचल है, फिर भी वह अभ्यास द्वारा नियन्त्रण में लाया जा सकता है। मन की शक्ति को हम तब तक नहीं जान सकते जब तक वह एकाग्र नहीं हो जाता। हमारे ऋषि मुनियों ने मन को ज्योतियों की भी परम ज्योति माना है। किन्तु उसकी शक्ति एकाग्र होने के बाद ही हम जान सकते हैं। जिस

प्रकार तीव्र गति से चलने वाले बिजली के पंखे को हम केवल गोल चक्र ही देखते हैं और जब रुक जाता है तो उसकी तीन–चार पंखुड़ियाँ अलग–अलग दिखलायी देने लग जाती है। इसी प्रकार मन को एकाग्र करके ही उसके अन्दर छिपे हुए रहस्यों को जान सकते है। अतः हमने किस एक साधन का सहारा लेकर अपने जीवन को सफल बनाने हेतु सहारा लेना चाहिए।

हमारे शास्त्रों में ऋषि–मुनियों ने आदि काल से योग मार्ग को सर्वोच्च स्थान दिया है। जो योग को धारण करते हैं उनका जीवन सफल होता है। भगवदगीता में जगदात्मा अखिल लोक पावन श्रीकृष्ण भगवान ने अर्जुन को गीता में परमोपदेश देकर उसको सब प्रकार से कृतार्थ कर दिया और पूर्ण विश्वास दिलाते हुए यह स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज,
अहंत्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

हे अर्जुन तुम सब धर्म पुण्यों के झमेलों को छोड़कर मेरी एक ही शरण हो जा मैं तुझे सब प्रकार के पापों से छुड़ा दूँगा।

आम साधारण बात भी है कि दो किश्तियों में पैर रखने वाला व्यक्ति हमेशा डूबता है, एक किश्ती में बैठने से ही नदिया/समुद्र पार किया जा सकता है। यह जीवन भी नदिया/समुद्र की भाँति है, इसको पार करना सभी चाहते है अतः किसी साधन को अपनाना बहुत आवश्यक है। योग साधन ही एक ऐसा साधन है जिससे यह जीवन रूपी नदियाँ/समुद्र पार किया जा सकता है। योग को जानने के लिए किसी योगवेत्ता का सहारा लेना चाहिए। लेकिन कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो साधारण से अभ्यास में जल्दी से जल्दी उत्तम परिणाम चाहते हैं, ऐसे लोग असफल रहा करते हैं।

धीरे–धीरे रे मना धीरे सब कुछ होए
माली सिंचे सौ घड़ा फल ऋतु पै होए।।
करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जावत से शील पर पड़त निशान।।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए अभ्यास को निरन्तर जारी रखना चाहिए। जगदात्मा श्रीकृष्ण भगवान ने अर्जुन को कहा कि कर्म करने में तेरा अधिकार है, उसके फल में नहीं, कर्म करना कभी मत छोड़ो बल्कि निष्काम भाव से कर्म करते ही रहो, उसका अच्छा फल प्राप्त होगा। शास्त्रीय सिद्धान्त भी है कि किसी भी अभ्यास के निष्कर्ष को पाने के लिये उसे श्रद्धापूर्वक लम्बे समय तक करता चला जाय। इस बात का निर्देश भगवान पतंजलि देव ने भी किया है कि लम्बे समय तक नियमानुवर्तिता से किया हुआ अभ्यास स्थायी होता है।

इस लेख का प्रयोजन भी यही है–

एक साध्य सब सधै, सब साध्य सब जाय।

''पतिवृत योग''

डा. जे.पी. शर्मा, कृषि उपनिदेशक (से. नि.) पौण्टासाहिब, हि. प्र.

मानव अथवा कोई भी जीव जब तक परतंत्र होता है, तब तक वह स्वतन्त्र और खुशहाल जीवन नहीं जी सकता। सुखी जीवन जीने को आवश्यक है उस परम पिता परमात्मा के गूढ़ रहस्यों का ज्ञान। अज्ञानी जीव सदैव बन्धन में रहकर ही जीवन काटता है। परमात्मा के गूढ़ रहस्यों के जानने को आवश्यक है कि हम अपनी आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ें। जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिलना ही ''योग'' होता है। योग के द्वारा जीवात्मा, परमात्मा से मिलकर उसके अतिगोपनीय रहस्यों की जानकारी प्राप्त करती है।

हमारे पूर्वजों ने आत्म साक्षात्कार के द्वारा कई तरह के योगों का वर्णन किया है। अपनी अपनी सुविधा और भावनाओं के अनुरूप ''योग मार्ग'' का सहारा लेकर परमपद प्राप्त किया जा सकता है।

हर स्त्री किशोरावस्था में अपने पिता, भाई के आधीन रहती है। शादी उपरान्त अपने पति के आधीन, विधवा होने पर अपने पुत्र के आधीन रहती है। अतः सारांश यह है कि स्त्री को कभी भी स्वतन्त्र नहीं रखा जाता। शास्त्रों में भी स्वतन्त्र न रखने की मनाई है। योग साधना के लिये चित्त वृत्तियों का निरोध आवश्यक होता है। निरोध के लिये–चित्त की चंचल वृत्तियों को विषय वासनाओं से हटाकर भगवान की सगुण अथवा निर्गुण मूर्ति में स्थिर करना ही योग है। उसी प्रकार चित्तवृत्ति सहित बहिर्मुख इन्द्रियों को विषयवासनाओं से हटाकर स्त्री अपने पतिदेव में स्थिर करे, तो वह स्त्री का 'पतिवृत योग' ही होगा।

योग के लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार इत्यादि के द्वारा चित्त को भगवान के आधीन रखा जाता है। उसी तरह पति के निमित्त अपनी मानसिक, वाचिक और कायिक चेष्टायें करते हुये सदैव, पति के परतन्त्र रहना ही, स्त्रियों को पतिवृत योग ही परम साधन बतलाया गया है।

मनुष्यों के लिये साकार अथवा निराकार भेद से दो तरह की उपासना कही जाती है, परन्तु स्त्रियों के लिये स्वतन्त्र रीति से उपासना की आज्ञा नहीं दी गयी है। उन्हें केवल एक पतिवृत रूप सगुण उपासना का ही विधान वेदशास्त्रों में कहा गया है। यद्यपि गार्गी, मैत्रेयी आदि विदुषिओं ने ज्ञानमार्ग द्वारा निर्गुण ब्रह्म तथा गोपियों, मीराबाई आदि ने भक्तिमार्ग द्वारा सगुण ब्रह्म की साधना की है। परन्तु ये सब असाधारण कोटि की महिलायें थीं।

सती अनसूया, सीता, अरुन्धती, सावित्री, गान्धारी आदि ने अपने पतियों को ही भगवान मानकर आत्मसमर्पण से सेवा पूजा की तथा उच्च परमपद प्राप्त किया।

अष्टांग योग के द्वारा पुरुष ने जो शक्ति प्राप्त की, उसी शक्ति को स्त्रियों ने अपने पतिवृत योग से अल्पकाल में ही सिद्ध किया है। निम्न उदाहरण उनके प्रमाण हैं–

(1) महाभारत युद्ध की समाप्ति पर धृतराष्ट्र के पुत्रों में से केवल एक दुर्योधन ही शेष बचा था। पाण्डव पुत्र वीर भीमसेन ने उसे भी मारने की प्रतिज्ञा कर रखी थी। अपना अन्त समझकर दुर्योधन अपनी माता गान्धारी से मिलने गया। माता गान्धारी ने दुर्योधन को अमरता प्राप्त करने का उपाय पूछने के लिये धर्मराज युधिष्ठिर के पास जाने को कहा। युधिष्ठिर ने उसे उपदेश दिया ''भाई'' अगर तू सर्वांग नग्न होकर अपनी माता के सामने जाय और माता तुझे एक बार अपनी दृष्टि से देख ले तो फिर तुझे हजार भीमसेन भी नहीं मार सकते।

दुर्योधन जब धर्मराज के उपदेशानुसार माता से मिलने जा रहा था तब मार्ग में उसे पाण्डव प्रेमी योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण जी महाराज मिल गये। भगवान ने अपना खेल बिगड़ते देख, दुर्योधन को अपनी योगमाया से समझाकर पत्तों की 'लँगोटी पहनाकर गान्धारी के पास भेज दिया। माता ने पूछा धर्मराज ने जैसा समझाया है वैसे ही आये हो! दुर्योधन के मुंह से अनायास ही निकल गया ''हाँ जी!'' तब माता गान्धारी ने अपनी आँखों की पट्टी खोली और उसे देखा तो हतप्रभ हो गयी। अपने पतिवृत योग बल से सहज ही समझ गई तथा कहा–

''मार्गेत्वया सम्मिलितोऽधुना किं कृष्णः किमूचे वचनं वदस्व।''

हे पुत्र मार्ग में क्या तुम्हें श्रीकृष्ण मिले? और उन्होंने तुमसे क्या कहा, वही बतलाओ। सदैव आँखों पर पट्टी बांधकर रखने वाली माता की इस प्रकार की ज्ञानशक्ति देखकर दुर्योधन चकित रह गया। इस ज्ञान शक्ति का कारण अपनी माता से पूछा। तब पतिवृता गान्धारी ने बतलाया–

''योगेन शक्तिः प्रभवेन्नराणां पतिव्रतेनापि कुलांगनानाम्''

अर्थात् पुरुषों को योग से शक्ति मिलती है और स्त्रियों को अपने पतिवृतयोग से।

गान्धारी ने कुपित होकर पतिव्रत योग बल से भगवान श्रीकृष्ण को भी शाप दे दिया। हे कृष्ण तुमने मेरे पुत्रों का नाश कराया है, उसी प्रकार तुम्हारे यादवजन भी नष्ट हो जायेंगे।

क्या स्त्री के पतिव्रत योग की शक्ति, पुरुषों के अष्टांग योग से कहीं कम है? अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की सृष्टि, स्थिति, और संहार करने वाले–कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथा कुर्तुम् समर्थ श्री कृष्ण भी इस पतिवृता के शाप को अन्यथा करने में समर्थ न हो सके।

(2) सत्यवान–सावित्री की कथा सुनी होगी। सावित्री पतिवृत योग का ही अनुसरण करती

थी। उसके पति सत्यमान की आकस्मिक मृत्यु हो गयी थी। पतिवृत धर्म का पालन करने से वह यमलोक पहुँच गयी तथा अपने पति की आत्मा वापिस भेजने की यमराज से विनती करने लगी। उसने यमराज की सब तरह से पूजा–अर्चना की मगर उन्होंने उसके पति की आत्मा वापिस करने से मना कर दिया। यमराज उस सावित्री की पूजा सेवाभाव से खुश थे। उन्होंने सावित्री से कोई वर मांगने को कहा। सावित्री ने तुरन्त बेटा पैदा होने के लिये वरदान मांग लिया। यमराज ने बिना सोचे समझे तुरन्त बेटा होने का वरदान सावित्री को दे दिया। सावित्री वहीं खड़ी रही। यमराज जी ने सावित्री को जाने को कहा। इस पर सावित्री ने यमराज से कहा—महाराज बेटा होने का वरदान तो आपने मुझे दे दिया, मगर बिना पति के बेटा कैसे पैदा होगा? अन्ततः यमराज को सत्यमान जीवित करना पड़ा। तब खुशी–खुशी सावित्री यमलोक से वापिस आयी। अपने पतिवृत योग की ही शक्ति थी जिस कारण सावित्री ने पति को पुनर्जीवित करा लिया। धन्य है नारी शक्ति! इसी यादगार में भारतीय नारियाँ आज भी हर वर्ष सावित्री वट पूजा करती है।

(3) एक रात्रि महाराज भोज, प्रजा की स्थिति जानने के लिये नगर में घूम रहे थे। उन्होंने देखा कि एक स्त्री अपने पति के पैर दबा रही है तथा पति सोया हुआ है। पति उसके घुटनों पर सो रहा था। कमरे के दूसरे कोने में बच्चा सोया था। बीच में एक अग्निकुण्ड था जिसमें आग जल रही थी। उसी समय बच्चा जाग गया तथा चिल्लाता हुआ अग्निकुण्ड की तरफ आने लगा। माता ने बच्चे को देख लिया फिर भी उसकी उपेक्षा कर दी क्योंकि पति उसके घुटनों पर सोया था, अगर बच्चे को पकड़ने के लिये उठती तो उसके पति की नींद खुल जाती और उसका पतिवृत धर्म खण्डित हो जाता। बच्चा नादान होने के कारण अग्निकुण्ड में गिर गया। महाराज भोज ने समझ लिया कि बच्चा भस्म हो जायेगा मगर देखिये पतिवृता के शाप से दहकती हुई आग पानी के समान शीतल हो गयी तथा बच्चे की जान बच गयी। पतिवृता स्त्री के पतिवृत योगशक्ति से महाराज भोज हतप्रभ चकित रह गये। सोचिये अष्टांग योग की शक्ति से पतिवृत योग शक्ति कहीं कम तो नहीं है। महाराज मनुजी पतिवृत योग शक्ति से प्रभावित होकर प्रशंसा करते हुये कहते हैं—

नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न वृतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते।।

अर्थात् स्त्रियों के लिये अलग यज्ञ, वृत, उपवास, पूजा–पाठ नहीं है। केवल अपने पति की सेवा करने से उच्चपद को प्राप्त करके, देव लोक प्राप्त करती है।

(4) माता अनसूया अपने पतिवृत धर्म के लिये जगत प्रसिद्ध हैं। एक बार ब्रह्मा, विष्णु

तथा महेश, अपने रूप बदलकर ब्राह्मण वेश में माता अनसूया के पास पतिवृत धर्म की परीक्षा लेने के भाव से उनकी कुटिया पर पहुँचे। तीनों ने भिक्षा देने की माता से प्रार्थना की। उस समय माता के पति कुटिया पर नहीं थे। माता अकेली थीं। माता जी ने तीन ब्राह्मण एक साथ देखे तो कुछ शंका हुई। अपने पतिधर्म शक्ति से माता ने जान लिया कि ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश तीनों मेरी परीक्षा लेने के विचार से आये हैं। माता ने तीनों को बच्चा बना लिया और पालने डालकर उन्हें दूध पिलाया। खूब सेवा की। तीनों देव कुछ दिनों के लिये अपने अपने लोक न जा सकने के कारण माता, ब्रह्माणी देवी, लक्ष्मी जी तथा माता पार्वती जी को बेचैनी होने लगी। कहाँ गये उनके पति? ढूँढ़ते ढूँढ़ते तीनों ही देवियाँ, माता अनसूया के आश्रम आ पहुँचीं। उन्होंने माता अनसूया से जानना चाहा, क्या उनके पति यहाँ आये थे? तब माता अनसूया ने उन्हें पालना दिखलाया और कहा कि आपके पति इसी पालने में हैं। अपने अपने पति की पहचान करके ले जाओ! तीनों ही उन्हें देखकर घबड़ा गयीं। तीनों बच्चे रूप में एक से प्रतीत हो रहे थे। अन्त में तीनों माताओं ने माता अनसूया से प्रार्थना की तब उन्हें अपने–अपने पति ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश रूप में प्राप्त हुये। यह है पतिवृतयोग शक्ति। आश्रम से चलते समय प्रसन्न होकर तीनों देवों ने माता को अपने–अपने अंशावतार पैदा होने का आशीर्वाद दिया। ब्रह्मा जी के अंश से चन्द्रमा, विष्णु जी के दत्तात्रेय तथा महेश के अंश से दुर्वाशा का जन्म हुआ!

स्त्री अपने पतिवृत धर्म से देवत्व प्राप्त कर लक्ष्मी बन जाती है। सम्पूर्ण वेद शास्त्र स्त्री धर्म की स्तुति गा रहे हैं–

यस्य भार्या शुचिर्दक्षा भर्तारमनुगामिनी।
नित्यं मधुरवक्त्री च सा रमा न रमा रमा।।

भाव है कि जिस पुरुष की पत्नी बाहर–भीतर से सर्वथा पवित्र, कुशल, पति का अनुसरण करने वाली तथा निरंतर मधुर बोलने वाली हो, वही स्त्री सच्ची लक्ष्मी है और कोई नहीं। ऐसी स्त्रियों की सन्तानें सदैव सुशील, सच्चरित्र, प्रतिभाशाली ही पैदा होती हैं। एक बार प्रभु श्री रामजी ने श्री लक्ष्मण जी के ब्रह्मचर्य की परीक्षा के लिये उनसे प्रश्न किया कि लक्ष्मण।

पुष्पं दृष्टा फलं दृष्टा दृष्टा यौषित यौवनम्।
त्रीणि रत्नानि दृष्टैव कस्य नोच्चलते मनः।।

अर्थात् सुन्दर पुष्प, फल तथा स्त्री का योवन–इन तीन रत्नों को देखकर किसका मन विचलित नहीं होता? लक्ष्मण जी ने तत्काल बड़े सुन्दर शब्दों में उत्तर देते हुये कहा–

पिता यस्य शुचिर्भूतो माता यस्य पतिव्रता।
ताभ्यां यः सूनुरुत्पन्नस्तस्य नोच्चलते मनः।।

अर्थात् जिसके पिता पवित्र आचरण वाले हों तथा माता पतिव्रता धर्म पालक हो, उनके रजवीर्य से उत्पन्न सन्तान का कभी मन, चलायमान हो ही नहीं सकता।

यही कारण है कि योग और पतिव्रत योग इस भारत की आदि काल से सम्पत्ति बनी हुई है। इन्हीं दोनों शक्तियों के रहते हुये स्त्री तथा पुरुषों ने क्षणभंगुर सांसारिक आधि-भौतिक विषयों का उपयोग न करके आध्यात्मिक विषयों की ही खोज में अपना तन, मन, धन समर्पण करके अखण्ड पद प्राप्त करके भी देवपद को ठुकरा दिया। यही कारण है कि देवता भी पवित्र भारत भूमि पर जन्म लेने को ललचाते रहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, रा4जी, कृष्ण, माता पार्वती, लक्ष्मीजी तथा सरस्वती जी आदि आदि देव-देवियाँ इस पवित्र भारत भूमि पर अवतरित होती रही हैं।

भारत की पवित्र धरा से ही नारियों ने अनेकों देव व वीर पुरुषों को जन्म दिया है। यथा-

नारी नारी मत कहो, नारी नर की खान।
नारी से सुत ऊपजे ध्रुव प्रह्लाद समान।।

खेद है निजी स्वतन्त्रता के बहाने आज की नारी ने पवित्र "पतिव्रत योग" को मनमाने ढंग से विकृत कर दिया है।

सद्‌गुरु चरणों में प्रणाम !

जीवन की परिमितता

चित्त की एकाग्रता में सहायक दूसरी बात है-जीवन की परिमितता। हमारा सब काम नपा-तुला होना चाहिए। गणित-शास्त्र का यह रहस्य हमारी सब क्रियाओं में आ जाना चाहिए। औषधि जैसे नाप-तौलकर ली जाती है, वैसे ही आहार-निद्रा भी नपी-तुली होनी चाहिए। सब जह नाप-तौल चाहिए। प्रत्येक इन्द्रिय पर पहरा बैठाना चाहिए। मैं ज्यादा तो नहीं खाता, अधिक तो नहीं सोता, जरूरत से ज्यादा तो नहीं देखता-इस प्रकार सतत् बारीकी से जाँच करते रहना चाहिए। ऐसा अभ्यास होने पर सफलता निश्चित मिल जाती है।

-आचार्य विनोबा

लक्ष्य

दासानुदास बालक—पीयूषकान्त "काशी"

शीर्षक से ज्ञात होता है कि उपर्युक्त विषय गूढ़ होगा किन्तु यहाँ लक्ष्य का तात्पर्य जीवन एवं मोक्ष से है।

प्रत्येक जीवों की भाँति हम सब भी मनुष्य योनि में जन्म लिये है, जन्म लेने से पूर्व की हमें कोई भी बात या भूतकाल की कोई भी घटना याद नहीं है फिर भी शास्त्रों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि, मनुष्य जन्म दुर्लभ है।

गरुड़ पुराण में जीव की दशा का वृतान्त से वर्णन है, जीव माँ के गर्भ से लेकर मृत्यु पश्चात् भी कितने कष्ट झेलता है इसका विस्तृत वर्णन शास्त्रों एवं पुराणों में मिलता है।

मनुष्य माँ के गर्भ में आता है उसका प्राण माँस–मज्जा एवं गन्दे रक्त, पीत के बीच में फँसा रहता है, जीव भगवान से बारम्बार प्रार्थना करता है हे! भगवन् हमें इस नरक से दूर ले चलो यहाँ रक्त एवं माँस–मज्जा के बीच में मेरा दम घुट रहा है, जीव बारम्बार ईश्वर से अनुनय–विनय करता है।

जीव ईश्वर से कहता है हे! भगवन् मैं आपका सम्पूर्ण जीवन आभारी रहूँगा किन्तु आप मुझे इस नरक के द्वार से दूर ले चलो। परम करुणा निधान प्रभु उस पर दया करके कि चलो यह जीव अपने जन्म–मरण की क्रिया से मुक्ति पाना चाहता है उसे उस नरक से दूर करके दिव्य जीवन प्रदान करते हैं किन्तु वही जीव जो मनुष्य रूप में जन्म लेता है, संसार सागर में आकर के फँस जाता है, उसे ईश्वर को दिया गया अपना वह वचन याद नहीं रहता है जो उसने गर्भकाल में ईश्वर को दिया था कि बाहर चलकर आपकी भजन करूँगा आराधना करूँगा।

क्योंकि जीव संसार रूपी मोह–माया में इतना अनुरक्त हो जाता है कि यही संसार उसे सब कुछ समझ में आने लगता है किन्तु शायद उसे यह याद नहीं कि ना जाने तुमने कितने ऐसे जन्म भोगे हैं कभी कुत्ता तो कभी बन्दर तो कभी नाली का कीड़ा तो कभी चींटी ना जाने कितने जन्मों को भोगा है।

मनुष्य योनि में कभी किसी की माँ बनकर जन्म लिया तो कभी पुरुष रूप में। यही तो ईश्वर का खेल है।

वह हमें संसार में भेजता है किन्तु हम फिर भी यहीं फंसे के फंसे रह जाते हैं शास्त्रों एवं पुराणों का अध्ययन करने पर भी हम सर्व रूप से मोह का परित्याग नहीं कर पाते।

इसलिए हमें याद करना होगा उस **लक्ष्य** को उस वचन को जो हमने माँ के गर्भ में ईश्वर से किया था।

यह संसार मिथ्या है, यहाँ के भोग विलासिता में पड़कर जीवन–जीने से हम अपना नाश कर रहे हैं। हमें मात्र निमित्त भाव से अपने कार्य को करना चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन से गीता में कहा है–

निमित्त मात्रं भव सव्य साचिन।।

प्रभु की करुणा कृपा से हमें सद्गुरुदेव की प्राप्ति हुई है जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से हमारा मार्गदर्शन करते रहते हैं तो हमें परम प्रभु कृपानिधान गुरुदेव का अनुसरण करना चाहिए जिससे मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो।

गुरुदेव कहा करते हैं–

''गुरु भक्तिं सदा कुर्यात् श्रेयसे भूयसे वरः।''

अर्थात्

''भूरि–भूरि कल्याण चाहने वाले को सदा गुरु भक्ति करनी चाहिए।''

सत्य तो यही है कि पूर्व जन्म के संस्कार प्रबल थे जो हमें इस जन्म में सिद्धयोगी मिले, इसलिए इस सिद्धयोग की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए हम मुक्ति के मार्ग को बढ़ें।

जय गुरुदेव!

"सांसों की लय में जीवन संगीत"
श्री श्री रविशंकर का चिंतन

ध्यानयोग—सांसों पर टिका है हमारा अस्तित्व। यदि सांस है, तो जीवन है। यदि सांस नहीं है, तो हमारा अस्तित्व भी उसी समय समाप्त हो जाता है यानी जन्म और मृत्यु के बीच के अन्तर को दर्शाती है हमारी सांसें। क्या आपने कभी जीवन के इस महत्त्वपूर्ण स्रोत पर ध्यान दिया है? क्या आपने कभी यह सोचा है कि हमारी नाक में दो द्वार क्यों बने होते हैं? वैज्ञानिकों ने शोध के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि जब हम बाईं नाक से श्वास लेते हैं, तो हमारा दाहिना दिमाग अधिक सक्रिय हो जाता है। दाहिना दिमाग यानी रचना शीलता, कला, संगीत आदि को अपनाने के लिए प्रेरित करने वाला क्षेत्र। केवल यही नहीं, दाहिनी नाक से श्वास लेने पर दिमाग का बायां हिस्सा अधिक क्रियाशील हो जाता है। दिमाग का बायां हिस्सा तर्क, सोच–विचार, समझ क्रियाशीलता आदि से जुड़ा होता है।

सांसों का नियमित प्रवाह—सांस लेने या छोड़ने के दौरान यदि आप गौर करें, तो नाक का कोई एक द्वार अधिक सक्रिय होता है और दूसरा थोड़ा कम सक्रिय। जब दाईं नासिका से सांस का आवागमन हो रहा होता है, तब हम ज्ञान को अच्छे ढंग से ग्रहण कर पाते हैं। वहीं जब बाईं नाक से सांस आ–जा रही होती है तब हम ज्ञान की बातें सुनते तो रहते हैं, लेकिन उसे आत्मसात नहीं कर पाते। उसे संगीत की तरह सिर्फ सुनते चले जाते हैं। जब बाईं नाक से सांस लेने और छोड़ने का क्रम हो, तो कुछ पीना अच्छा होता है। वहीं दाईं नाक सांस लेने और छोड़ने का काम करे, तो कुछ भी खा लेना ठीक होता है। यदि दोनों नासिका द्वारों से सांसों का नियमित प्रवाह हो, तब हम ध्यान लगा पाते हैं, प्रार्थना कर पाते हैं।

ऊर्जा का स्रोत—यदि अपनी सांसों के आवागमन पर ध्यान केन्द्रित किया जाए, तो शरीर के सभी तंत्रों को ऊर्जा से भरा जा सकता है। प्राणायाम के दौरान हम सजग रहते हुए विधिपूर्वक सांस लेते और छोड़ते हैं। इससे सम्पूर्ण शरीर ऊर्जा से भर जाता है, अवसाद एवं नकारात्मक भावों से मुक्त हो हमारा मन प्रसन्न होने लगता है। हमारे अंदर तीन प्रमुख नाड़ियाँ होती हैं, जिससे प्राण का संचालन होता है। दाईं नासिका सूर्य नाड़ी और बाईं नासिका चन्द्र नाड़ी होती है। अग्नि नाड़ी इन दोनों के बीच होती है, जिसे सुषुम्ना कहा जाता है। शरीर में पाँच प्रकार के प्राण होते हैं—प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान। प्राण वह ऊर्जा होती है, जो

शरीर के ऊपरी हिस्से यानी हृदय के ऊपर वाले हिस्से में होती है। यदि प्राण असंतुलित है तो आप ठीक से सो नहीं पाएंगे। 'अपान' वायु वह ऊर्जा है, जो शरीर के निचले हिस्से में होती है। 'अपान' के असंतुलित होने पर आप थकान, आलस्य का अनुभव करने लगते हैं। 'समान' वायु पेट के आस पास होती है, जो हमारी पाचन क्रिया को प्रभावित करती है। 'उदान वायु छाती और गले के आस–पास होती है और यह हमारे भावनात्मक पक्ष को दर्शाती है। यदि यह असंतुलित है, तो हमारे अंदर कोई भावना विकसित नहीं हो पाती है। हम पत्थर की तरह कठोर हो जायेंगे और स्वयं को कमजोर भी महसूस करेंगे। 'व्यान' पूरे शरीर में होती है, जो हमारे जोड़ों को चलाती है। यदि 'व्यान' असंतुलित है तो हमारे शरीर में दर्द जोड़ों में लचीलापन न होना आदि होता है। सांस की नियमित क्रिया पर ध्यान देकर पंच प्राण को संतुलित किया जा सकता है।

साध लें संतुलन—भाव बदलने पर आपके सांस लेने का तरीका भी बदल जाता है। जैसे कि जब आप खुश होते हैं या कोई अच्छी खुशबू महसूस करते है, तो आपकी सांस धीमी और एक समान हो जाती है। व्यक्ति के हताश या गुस्से में होने पर उसकी सांस तेज–तेज चलने लगती है। जिस तरह प्रकृति में एक लय है, उसी तरह हमारी सांस में भी एक लय होती है। इस लय के बिगड़ने पर शरीर का प्रभावित होना तो तय है। हमें तरह–तरह की बीमारियाँ और अवसाद घेरने लगते हैं। जाहिर है कि हमारे अंदर जितना तनाव होगा,उतनी ही हमारी सांसों की लय बिगड़ी हुई होगी। सांस की प्रक्रिया या लय को संतुलित किया जा सकता है। निरीक्षण करने पर यह पाया जा सकता है कि हमारा शरीर भी एक निश्चित लय का पालन करता है। जहाँ एक निश्चित समय पर आपको भूख लगती है तो दूसरे निश्चित समय पर आप सोना भी चाहते हैं। इसे ही जीवन लय कहा जाता है।

सांस और मन का संबंध—हम जानते हैं कि सांस और शरीर में एक संबंध है, लेकिन सांस और मन में भी एक संबंध है। श्वास मन और शरीर के बीच कड़ी है। अगर मन पतंग के समान है, तो श्वास धागा समान। धागा जितना लम्बा होगा, उतनी ऊँची पतंग उड़ेगी। सांस पर थोड़ा भी ध्यान देने से हमारे अंदर बड़ा परिवर्तन आ सकता है। लाखों–करोड़ों लोग ध्यान और श्वसन तकनीकों से अवसाद से बाहर आये हैं। इसी तरह हमारी सांस में छिपा है जीवन का राज। यदि हम अपनी सांस लेने की सही प्रक्रिया को जान जाएं, तो हम न सिर्फ अपनी नकारात्मक भावनाओं पर विजय पा सकते हैं, बल्कि मन पर नियंत्रण भी हासिल कर सकते हैं और हमारा जीवन संगीत के समान मनमोहक बन सकता है।

सभी चिंताओं से मुक्त होना है योग

श्री श्री आनन्दमूर्ति

योग की अनेक महापुरुषों ने अपने–अपने तरीके से व्याख्या की है। वैसे योग के बारे में साधारणतः लोग समझते हैं कि दो–चार आसन और प्राणायाम करने से ही योग हो गया। किन्तु ऐसी बात नहीं है। महान दार्शनिक महर्षि पतंजलि के अनुसार योग की परिभाषा है—मनुष्य के अंदर जितनी वृत्तियां हैं, उनका निरोध ही योग है। स्वाभाविक तौर पर मनुष्य के अंदर पचास वृत्तियाँ हैं और अस्वाभाविक तौर पर एक हजार वृत्तियाँ। वैसे योग शब्द का शाब्दिक अर्थ है–जोड़ना और योग का दूसरा अर्थ है–एकीकरण यानी मिलन। पतंजलि के योग का अर्थ न तो जोड़ना और न ही एकीकरण है। पतंजलि योग का तात्पर्य सभी वृत्तियों के निरोध से है। योग शब्द की दूसरी व्याख्या है—सभी चिन्ता से मुक्त होने का नाम ही योग है। उदाहरणस्वरूप थोड़ी देर के लिए मान लिया जाए कि अगर हम सभी चिन्ता से मुक्त हो गए तो योग की स्वाभाविक प्रक्रिया कैसे होगी। योग के बारे में भगवान शिव और कृष्ण ने जो व्याख्या दी है, वही सर्वश्रेष्ठ और सटीक व्याख्या है—जीवात्मा के परमात्मा के साथ एकाकार होने का नाम ही योग है। जिस तरह पानी और चीनी को मिलाने से एकाकार हो जाता है यानी मिलने के बाद चीनी और पानी का अलग अस्तित्व नहीं रहता है, उसी तरह आध्यात्मिक साधना के माध्यम से जब साधक परमात्मा के साथ मिल कर एक हो जाता है तो उस समय मैं तथा परमात्मा के बोध का कोई अस्तित्व नहीं रहता। यही सटीक और सर्वश्रेष्ठ योग प्रक्रिया है। आनन्द मार्ग के योग साधना में भी योग शब्द की व्याख्या इसी प्रकार है—जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलाने की जो आध्यात्मिक साधना की प्रक्रिया है, वही योग है। साथ ही महर्षि पतंजलि का अष्टांग योग सर्वश्रेष्ठ और व्यावहारिक माना गया है। तब आसन और प्राणायाम क्या हैं? हाँ, आसन करने से शरीर और मन स्वस्थ रहता है। यह ग्रंथि दोष को दूर करता है। आसन करने से मन अप्रिय चिंता से दूर रहता है। यह सूक्ष्म और उच्च कोटि की साधना में काफी मददगार साबित होता है। नियमित आसन करने से शरीर में लचीलापन होता है। योग करने से शरीर और मन का संतुलन बना रहता है। आसन मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—स्वास्थ्यासन और ध्यानासन। स्वास्थ्यासन मुख्यतः स्वास्थ्य लाभ और आध्यात्मिक प्रगति के लिए किया जाता है, जबकि ध्यानासन मन को केन्द्रित करने और साधना में मदद करता है। प्राणायाम एक प्रक्रिया है, जो श्वास नियंत्रण के साथ ईश्वरीय भाव आरोपित करता है।

योग की महिमा

(डॉ. ऋषिराम शर्मा, गणित विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

योग की महिमा का यथार्थ ज्ञान तो सम्प्रज्ञात समाधि की चतुर्थ भूमिका अस्मितानुगत समाधि में स्वतः प्राप्त केवल यथार्थ ग्रहण करने वाली ऋतम्भरा प्रज्ञा ही करा सकती है। तथापि मैं ऋतम्भरा प्रज्ञागर्भित आप्त वाक्यों का अवलम्ब लेकर जिज्ञासुओं के समक्ष परम श्रेयात्मक योग की महिमा का गुणगान करना चाहता हूँ। इस लेख से मेरा एक उद्देश्य है कि जैसे किसी अत्यन्त कष्टदायी पीड़ा से पीड़ित रोगी को उसके कष्ट से मुक्ति दिलाने वाली औषधि को पा जाने की बेचैनी रहती है और वह तब तक निरन्तर डॉक्टरों के पास दौड़ता रहता है जब तक कि उसे किसी औषधि पर विश्वास नहीं जम जाता है। ठीक वैसे ही मैं भी अत्यन्त कष्टदायी भवताप से पीड़ित अपने लिए और अपने भाई और बहनों के लिए किसी विश्वसनीय औषधि की आवश्यकता का अनुभव कर रहा हूँ जिसके पान से भवताप से मुक्ति मिल जाये। गरुण पुराण में तदर्थ औषधि का उल्लेख किया है कि–

''भवतापेन हि तप्तानां योगो हि परमौषधम्''

अर्थात् भवताप से तप्त जीवों के लिए योग ही परम औषधि है। बस मैं इस औषधि पर अपना और आप सब का विश्वास जमाने के उद्देश्य से कुछ लिखना चाहता हूँ।

संसार का प्रत्येक प्राणी जन्ममरणजराव्याधि–जनित यातनाओं और अनेकानेक मानसिक यातनाओं से असह्य दुःख भोग रहा है। वह दिनरात इन यातनाओं से मुक्ति पाने का प्रयत्न करता रहता है किन्तु उलझता ही जाता है। महर्षि वशिष्ठ जी ने सांसारिक जीवों के कल्याण हेतु भगवान राम को निमित्त बनाकर उपदेश किया कि–

दुःसहा राम संसार विषवेगविषूचिका
योगगारुढमन्त्रेण पावनेनोपशाम्यति।।

अर्थात हे राम! भवताप रूपी विषविषूचिका का वेग दुःसह है। यह केवल पवित्र योग रूपी गरुणमन्त्र के उपचार से शान्त होती है।

सांसारिक दुःख तीन प्रकार के होते हैं–आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक। योगहीन अशक्त जीव अपने विशुद्ध आनन्दमय स्वरूप को न पहचान कर ''मैं देह हूँ'' इस भाव में बँधकर दुःख होता है। कफ, पित्त और वात आदि के विकार से उत्पन्न शारीरिक पीड़ा से होने वाले दुःखों और काम क्रोधादि से जनित मानसिक यातनाओं को आध्यात्मिक दुःख कहते हैं। अति शीत, अति उष्ण, अति वात, अति वृष्टि और विद्युत्पात आदि दैवी शक्तियों से जन्य दुःख को आधिदैविक कहते हैं। सिंह, वृश्चिक तथा सर्पादि प्राणियों से जन्य दुःख आधिभौतिक कहलाते हैं। वस्तुतः यह संसार एक भयंकर कंटकाकीर्ण अरण्य के समान है

जिसमें भटकता हुआ जिज्ञासु जीव मुक्तिपथ की खोज में चिन्तातुर है। उस पुण्यवान जिज्ञासु के लिए पूर्वाचार्यों ने आदेश दिया है कि–

''जननाशजरोग्रवनेचरम्
त्रिविधतापकुकंटकसंकुलम्
उपरमेत तृषोग्रदवानलम्
जगदरण्यमेक्ष्य सुधीरधीः।।''

अर्थात् जैसे भयंकर जंगल में शक्तिहीन जन्तुओं को शक्तिशाली सिंहादि हिंसक पशु खा जाते हैं वैसे ही शक्तिहीन जीवों को इस जगदरण्य में जन्म, मृत्यु और जरा ही भक्षण कर जाती है, क्योंकि ''नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'' जैसे ऋजुमार्ग से हटकर भटकते हुए पुरुष को शरीर के अवयवों में चुभने वाले तीक्ष्ण काँटे विदीर्ण कर देते हैं वैसे ही इस संसार रूपी जंगल के योगाभ्यास रूपी ऋजुमार्ग से हटकर भटकते हुए जीव को आध्यात्मिक, आधिदैविक और आदिभौतिक ताप रूपी कंटक विदीर्ण कर देते हैं। जैसे जंगल में बाँसों के परस्पर संघर्षण से उत्पन्न दावानल जंगल के वृक्षों और जंगली जन्तुओं को जला डालती है वैसे ही इस संसार रूपी जंगल में विषय–वासनाओं और इन्द्रियों के संघर्षण से उत्पन्न तृष्णा रूपी दावानल सांसारिक प्राणियों को जला डालती है। अतएव इस प्रकार के दुःखदायी संसार रूपी जंगल को विवेक दृष्टि से देखकर मुमुक्षु पुरुष को योग–साधन रूपी ऋजुमार्ग प्राप्त करने के लिए वैराग्य का आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि

''इहामुत्र विरक्तस्य संसारस्य प्रजिहासतः
जिज्ञासोरेव कस्यापि योगेस्मिनधिकारिता।।''

अर्थात् इस लोक और परलोक के विषय भोगों से विरक्त और इस दुखदायी संसार से मुक्ति चाहने वाले मुमुक्षु पुरुष का ही परमश्रेयात्मक योग में अधिकार है।

अब शंका होती है कि योग से हमारे दुःखों का अन्त कैसे होगा तथा योगाभ्यास से हमें क्या प्राप्ति होगी? इस शंका का निवारण जगदात्मा भगवान कृष्ण अपने मुखारविन्द से करते हैं कि–

''सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः।।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।
तं विद्यात् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्
सः निश्चयेन योक्तव्यो योगो निर्विण्णचेतसा।।''

अर्थात् उसको तुम योग के नाम से जानो जिसमें सर्व दुःखों का अभाव हो जाता है, जिसमें स्थित हुआ पुरुष अवर्णनीय अपार सुख को पाकर फिर कभी अपनी आनन्दमय

स्वरूपस्थिति से विचलित नहीं होता, जिसमें स्थित हुआ पुरुष महान् सांसारिक दुःखों से भी विचलित नहीं होता है, क्योंकि उसे वह अद्भुत लाभ मिल जाता है जिससे अधिक फिर कुछ भी पाना शेष नहीं रहता है। ऐसे परमश्रेयात्मक योग का निश्चयात्मक एवं निर्द्वन्द्व चित्त से अभ्यास करना चाहिए।

अब शंका होती है कि योग की शरण में आने पर ही भव-बन्धन से मुक्ति मिल जाती है तो श्रुतियों से विरोध हो जायेगा, क्योंकि श्वेताश्वतर उपनिषद् में प्रतिपादित है कि

''तमेव विदित्वातिमृत्युमति नान्यः
पंथा विद्यतेऽयनाय।''

अर्थात् ब्रह्मज्ञान से ही जन्ममरण रूप भवबन्धन से मुक्ति मिलती है। मोक्ष-प्राप्ति का इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं है।

स्मृतियों में भी लेख मिलता है कि-

''ज्ञानादेव तु कैवल्यं प्राप्यते येन मुच्यते''

अर्थात् ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है जिससे जीव भव-बन्धन से छूट जाता है।

भगवान् शंकराचार्य जी ने भी इसी की पुष्टि की है कि

''नान्योस्ति पंथा भगवन्धमुक्तेर्विना
स्वतत्वावगमं मुमुक्षोः''

अर्थात् मुमुक्षु के लिए तत्वज्ञान के अतिरिक्त भव-बन्धन से मुक्ति पाने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

भगवान कृष्ण ने भी अपने मुखारविन्द से इसे अंगीकार किया है कि

''सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते''

अर्थात् ज्ञान को पाकर जीव कृतकृत्य हो जाता है। किन्तु इसमें एक विशेष रहस्य और भी है कि

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति।।

अर्थात् निःसन्देह ज्ञान के समान पवित्र कोई वस्तु नहीं है किन्तु इस ज्ञान का योग-सिद्धि होने पर ही आत्मा में स्वयं प्रादुर्भाव होता है।

वस्तुतः माया के आवरण का क्षय हो जाना ही ज्ञान है, किन्तु बिना योग-सिद्धि के माया का अविद्याजनित आवरण क्षय होता नहीं है। एक बार लोक-कल्याणार्थ भगवती पार्वतीजी ने भगवान सदाशिव जी से भी यही शंका की थी कि

ज्ञानदेय हि मोक्षं च वदन्ति ज्ञानिनः सदा।
न कथं सिद्धयोगेन योगो किं मोक्षदो भवेत्।।

अर्थात् जब ज्ञानियों का कथन है कि केवल ज्ञान से मोक्ष मिलती है, अन्य साधन से नहीं

तो फिर सिद्धयोग से क्या प्रयोजन है और योग मोक्षदाता कैसे माना जाय।

इस शंका का समाधान स्वयं भगवान सदाशिव जी करते हैं कि

ज्ञानेनैव हि मोक्षं च तेषां वाक्यं तु नान्यथा
सर्वे वदन्ति खगेन जयो भवति तर्हि किम्
बिना युद्धेन वीर्येण कथं जयमाप्नुयात्
तथा योगेन रहितं ज्ञानं मोक्षाय न भवेत्
ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः
बिना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये।।

अर्थात् यह तो सत्य है कि ज्ञान से ही मोक्ष मिलती है। सभी मुख से कहते हैं कि खड्ग से युद्ध में विजय मिलती है किन्तु क्या कभी युद्ध और वीर पुरुष के बिना विजयश्री मिल सकती है अर्थात् नहीं। इसी प्रकार योग से रहित ज्ञान मोक्ष का दाता नहीं हो सकता। कोई चाहे कितना भी श्रोत्रिय ब्रह्मज्ञानी हो, धर्म का ज्ञाता हो, विरक्त हो, विजितेन्द्रिय हो अथवा चाहे देवता हो, वह भी योग के बिना मोक्ष नहीं पा सकता।

जब तक योग साधनों द्वारा चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध नहीं हो जाता तब तक परास्वरूपस्थिति नहीं प्राप्त होती। जैसे औषधि का बिना पान किये केवल नामोच्चारण से व्याधि दूर नहीं होती इसी प्रकार योग द्वारा अपरोक्ष अनुभूतियाँ किए बिना केवल ब्रह्मज्ञान के श्रवणमात्र से मोक्ष नहीं मिलती। यदि ब्रह्मज्ञान से ही मोक्ष मिल जाती होती तो दैत्यों के पति विरोचन को तो स्वयं ब्रह्मा जी ने ब्रह्मज्ञान दिया था अतः उसकी मोक्ष हो जानी चाहिए थी किन्तु नहीं हुई। अतः यही निश्चय होता है कि

''नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता
परामर्षाद्दिते विरोचनवत्''

अर्थात् विरोचन की तरह केवल ब्रह्मज्ञान के श्रवणमात्र से कृतकृत्यता नहीं मिलती।

श्रुतियों ने भी यही निष्कर्ष निकाला कि–

''अथ तद्दर्शनाभ्युपायो योगः। अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।''

अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कार का उपाय योग है। अध्यात्मयोग की सिद्धि से ही धीर पुरुष अपने स्वरूप को जानकर हर्षशोक से मुक्त हो जाता है।

स्कन्द पुराण में योग की श्रेष्ठता का निरूपण इस प्रकार किया है कि

आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्च योगादृते नहि।
स च योगश्चिरं कालमभ्यासादेव सिद्धयति।।

अर्थात् आत्म ज्ञान से मोक्ष मिलती है किन्तु वह भी योग के बिना नहीं। वह मोक्ष का हेतु योग चिर काल के अभ्यास के अनन्तर ही सिद्ध होता है।

मोक्ष में योग की अपेक्षा का कारण यह है कि जीव जन्मजन्मान्तरों से अविद्या के आवरण में देह–बुद्धि से ही व्यवहार करता आया है। योगाभ्यास के बिना वह देह से अलग होकर अपनी

चिद्रूपता का अनुभव कर नहीं सकता। वेदान्त के महावाक्यों आदि से जो ज्ञान की प्राप्ति होती है वह भी वृत्तिजन्य ज्ञान रहता है क्योंकि जब तक योगाभ्यास द्वारा निरोध समाधि की प्राप्ति नहीं होती तब तक जीव को वृत्तिसारूप्यता से ही अनुभव होते हैं। योगवासिष्ठ में महर्षि वसिष्ठ जी ने भगवान राम को इसका रहस्य समझाया है कि

जन्मान्तरचिराभ्यस्ता राम संसारसंस्थिति।
सा च चिराभ्यासयोगेन बिना न क्षीयते क्वचित्।।

अर्थात् हे राम! जीव में संसार–भावना जन्म–जन्मान्तरों से चली आ रही है अतएव दृढ़ हो गई है। वह चिरकाल तक योगाभ्यास किए बिना कभी क्षीण नहीं होती है।

यहाँ एक शंका होती है कि यदि योगाभ्यास के बिना अपरोक्ष ज्ञान की अनुभूति तथा कैवल्यमोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है तो पुराणों में राजा जनक, एवं ब्राह्मणों और तुलाधार वैश्य आदि को बिना योगाभ्यास मोक्ष कैसे मिल गया। भगवान पतंजलि ने अपने योग दर्शन में योग–सिद्धि के दो मार्ग बताये हैं। एक तो ''भगवत्प्रत्ययः विदेहप्रकृतिलयानाम्'' अर्थात् जिनकी पूर्वजन्मों में किए गये योगाभ्यास से तत्वलीनता हो चुकी है उनको जन्म लेने पर स्वतः योगसिद्धि हो जाती है। दूसरों के लिए ''श्रद्धावीर्यस्मृतिप्रज्ञ पूर्वकमितरेषाम्'' अर्थात् श्रद्धा, ब्रह्मचर्य, ध्यान और समाधि के अभ्यास से योग–सिद्धि होती है। सो राजा जनक आदि को पूर्वजन्मकृत अनुष्ठानों और योगाभ्यास के फलस्वरूप उपरोक्त ज्ञान की प्राप्ति हुई। यह बात पुराणों में भी प्रतिपादित है कि

जैगीषव्यो यथा विप्रो यथा चैवासितादयः।
क्षत्रियाजनकाद्यास्तु तुलाधारारयो विशः
ऐते चान्ये च बह्वो नीचयोनिगता अपि
ज्ञाननिष्ठां परां प्राप्ताः पूर्वाभ्यस्तस्वयोगतः।।

अर्थात् जैगीसव्य तथा असित इत्यादिक ब्राह्मण, जनकादि क्षत्रिय और तुलाधारादिक वैश्य तथा अन्य भी अनेक नीच योनि को प्राप्त हुए जीवों ने अपने पूर्वजन्मकृत योगाभ्यास के फलस्वरूप ही अपरोक्ष ज्ञान की प्राप्ति की।

अतएव मुमुक्षु को योग–साधना में लगना ही श्रेयस्कर है क्योंकि

''ज्ञानं वदन्तीह विमोक्षकारणं
तज्जायते नैव दिलोलचेतसि
लौल्यं न योगेन विना प्रशाम्यति
तस्मातदर्थ हि मतेत् साधकः।''

अर्थात् ज्ञान मोक्ष का हेतु तो है किन्तु मोक्षदाता ज्ञान की चंचल चित्त में उत्पत्ति ही सम्भव नहीं है क्योंकि चित्त की चंचलता योगाभ्यास के बिना नहीं शान्त होती। अतः मुमुक्षु को योग का ही साधक बनना चाहिए।

जगदात्मा भगवान कृष्ण ने भी गीता में योग सर्वश्रेष्ठता को अंगीकार किया है कि "जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्म तिवर्तते" "सन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः" "तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः" "योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्" इत्यादि। योगाभ्यासी को जो गति प्राप्त होती है वह घोर तपस्या करने से, तीव्र स्वाध्याय करने से तथा बड़े-बड़े यज्ञ करने से भी नहीं प्राप्त होती। अत्रिसंहिता में इसकी पुष्टि की है कि

न च तीव्रेण तपसा न स्वाध्यायैर्न चेज्जयया।
गतिं गन्तुं द्विजनः शक्ताः योगात्सम्प्राप्नुवान्ति याम्।

योग क्या है और योगाभ्यास कैसे किया जाय यह तो सद्गुरुदेव भगवान की शरणागति में ही समझ में आता है। बिना गुरुकृपा के किसी का कल्याण नहीं होता। इस लेख का विषय तो यही है कि कल्याण के मार्गों में योग ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। अतएव सर्वभाव से मनोवांछित फल देने वाले योग रूपी कल्पवृक्ष की आराधना करनी चाहिए। अब हम योग रूपी कल्पवृक्ष का वर्णन करते हैं कि

हृद्भुवो निगमबोधसुमूलको द्वि-
स्कन्धः शखुन्नतलतुश्च यमादिपर्णः
ध्यानादिपुष्पललितश्च विमोक्षसस्यः
सर्वार्थदो जयति योगसुरद्रुमोऽयम्।।

अर्थात् योग मनोवांछित फल देने वाला कल्पवृक्ष है क्योंकि अन्य सभी परमात्मा की ओर ले जाने वाले साधन रूपी वृक्षों की अपेक्षा यह श्रेष्ठतर है। हृदय रूपी भूमि में इस की उत्पत्ति होती है भगवान पतंजलि ने कहा है कि चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाने पर आत्मसाक्षात्कार हो जाता है। जैसे वृक्ष के विस्तार की हेतु उसकी जड़े होती हैं वैसे ही इस योग रूपी कल्पवृक्ष का विस्तार ब्रह्मबिन्दु उपनिषद्, अमृत बिन्दु उपनिषद, ध्यानबिन्दु उपनिषद, योगतत्व, योगशिखादि उपनिषदों से, गीतका, रामायण, योगदर्शन आदि शास्त्रों से तथा गुरु वाक्यों से होता है। जैसे वृक्ष के फल-फूल और पत्तियों को सम्हालने के स्कन्ध होते हैं वैसे ही योग रूपी कल्पवृक्ष के अभ्यास और वैराग्य रूपी दो स्कन्ध हैं। याज्ञवल्क्य संहिता में योग की प्रसिद्धि के लिए षड् साधन बताये हैं कि

उत्साहसात्धैर्यात् तत्वज्ञानाच्चानिश्चयात्।
जनसंगपरित्यागात् षड्भिर्योगः प्रसिद्धयति।।

अर्थात् उत्साह, साहस, धैर्य, तत्वधान, निश्चय तथा जनसंसर्ग से योग की प्रसिद्धि होती है। यह षडंग ही योग रूपी कल्पवृक्ष की लतायें हैं। यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारादि बहिरंग साधन इसके पत्ते हैं। धारणा, ध्यान और समाधि रूप योग के अन्तरंग साधन योग रूपी कल्पवृक्ष के पुष्प हैं और असम्प्रज्ञात समाधि से उत्पन्न मोक्ष रूपी फल लगता है।

बस ऐसे योग रूपी कल्पवृक्ष को पाने के लिए जो श्रद्धालु जिज्ञासु प्रयत्न करेंगे उनकी योगयोगीश्वर आनन्दकन्द महाप्रभु जी सब प्रकार से सहायता करेंगे।

योगासनों द्वारा पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ

(ब्रह्मचारी शिवप्रसाद त्रिपाठी, रानी तालाब जम्बू तवी)

श्री मत्स्येन्द्रनाथ श्री गोरक्ष–नाथ श्री जालन्धर नाथ आदि प्राचीन, श्री रामलाल आदि अर्वाचीन सिद्ध योगियों ने चिर–काल–पर्यन्त भारत में सर्वत्र विचरण कर योग और योगासनों का प्रचार और प्रसार किया। तथा कोटि–कोटि जनता को रोगों से विमुक्त कर अभिनव, स्वस्थ जीवन प्रदान किया। भारत इन योगियों का सर्वदा अत्यन्त आभारी रहेगा। शरीर इन्द्रियाँ प्राण मन और बुद्धि इस सब समुदाय के स्वस्थ रहने को पूर्ण–स्वास्थ्य कहते हैं योगासनों के द्वारा ये सब पूर्ण स्वस्थ रहते हैं। यह योगशास्त्र का निश्चित सत्य–सिद्धान्त है जबकि वर्तमान समय में भारतीय जनता अधिकांश में अनेकानेक प्राचीन तथा नवीन रोगों से आक्रान्त रहती है। रोगों का परिप्लव सा आया हुआ है। बार–बार अपार धन राशि व्यय करने और रोग विघातनी अगणित योजनाओं आयोजनाओं के अत्यन्त प्रयोग करने पर भी पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हो रही है। ऐसी अवस्था में स्वल्प आयास और स्वल्प धन व्यय से निष्पन्न स्वेच्छित आशुफल प्रद योगासनों के प्रचार और प्रसार की अत्यन्त आवश्यकता है। इससे भारतीय जनता अत्यन्त तेजस्वी बल शालिनी और स्वास्थ्य सम्पन्न हो सकती है। योगासन जनता के लिए परम कल्याणकारी है। रोग दो प्रकार के होते हैं। एक स्वाभाविक दूसरे आनुसङ्गिक। स्वाभाविक रोग प्रायः द्वन्द्वों से उत्पन्न होते हैं। यथा हर्ष–शोक क्षुधा–पिपासा सुख–दुःख मानपमान, काम क्रोध लोभ–मोह, जन्म–मृत्यु जरा आधि–व्याधि इत्यादि। आनुसङ्गिक रोग वे हैं जो वात पित्त कफ के न्यूनाधिक अनुसङ्ग से उत्पन्न होते हैं यथा क्लीवता अग्नि मान्द्य, मधु–महादि अर्दित अर्धाङ्ग इत्यादि। योगासनों के अभ्यास से द्वन्द्वों पर पूर्ण विजय प्राप्त हो जाती है द्वन्द्वज रोग अभ्यासी के पूर्ण वश में हो जाते हैं। वे अभ्यासी को कभी किसी भी अवस्था में विवश या व्यथित नहीं कर सकते यह निश्चित सिद्धान्त है। आनुसङ्गिक रोगों का योगासनों के द्वारा सर्वथा समूलोन्मूलन हो जाता है। ततो द्वन्द्वानभिघातः योग दर्शन साधन पाद सूत्र। आसन सिद्धि से अभ्यासी के शरीर पर द्वन्द्वों का अनभिघात (असम्वेदन) रहता है अर्थात् द्वन्द्वों का प्रभाव अभ्यासी के शरीर पर नहीं पड़ता वह हर्ष शोकादि द्वन्द्वों से ऊपर उठ

जाता है। योगासनों के महत्त्व को दर्शाते हुए योग शास्त्रों में कहा है श्रसमेन रूजो हानी अर्थात् आसनों के अभ्यास से सर्व प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं। फिर शरीर अत्यन्त बलवान और पूर्ण स्वस्थ हो जाता है किसी भी परिस्थिति में कभी व्यथित नहीं होता। योग दर्शन साधन पाद सूत्र में महर्षि पतंजलि ने बताया है कि स्थिरम् सुख मासनम् = अर्थात् आसनों के = जिसके द्वारा स्थिरता और सुख प्राप्त होता है। अथवा आसन सिद्धि से स्थिर सुख प्राप्त होता है। अर्थात् शरीर इन्द्रियाँ प्राण मन और बुद्धि स्थिर सुख का अनुभव करते हैं। अभिप्राय यह है कि आसनों से साध्यासाध्य सब रोग नष्ट हो कर स्थिर सुख प्राप्त होता है। भ्रांत मनुष्यों ने योगासनों के विषय में जनता में भ्रम फैलाया हुआ है कि योगासनों द्वारा प्रत्येक मनुष्य पूर्ण लाभ उठा सकता है। श्री गोरखनाथ ने साक्षी होते हुए कहा है। गोरक्ष संहिता।

युवा वृद्धो वा व्याधितीव्याधितोऽपिवा।
अवश्य सिद्धमाप्नोति सर्व योगेषवतान्द्रितः।।

अर्थात् युवा वृद्ध अत्यन्त वृद्ध व्याधि ग्रस्त या व्याधि रहित ये सब प्रकार के मनुष्य अनालस्य होकर सब योगों में निरन्तर अभ्यास करने से अवश्य सफलता प्राप्त करते हैं। फिर आलसी अकर्मण्य मनुष्य कहते हैं कि योग का फल कहीं बारह वर्ष में प्राप्त होता है गोरक्ष संहिता में लिखा है—

ब्रह्मचारी मिताहारी त्यागी योग परायणः।
अब्दादूर्ध्व भवेत सिद्धः कार्यानाम विचारण।।

ब्रह्मचर्य से रहने वाला और मिताहार करने वाला, त्यागी और योग परायण मनुष्य साधक एक वर्ष के पश्चात् अवश्य सिद्ध हो जाता है। इस विषय में कोई संदेह नहीं है। यद्यपि योग का प्रत्येक आसन अभ्यासी के शरीर के किसी न किसी अवयव पर अवश्य उत्तम प्रभाव डालता है किन्तु अनेक आसन और मुद्राएँ ऐसी है कि जो अभ्यासी के समस्त शरीर का कल्प करके उसको पूर्ण आरोग्य, अत्यन्त सुदृढ़ बलवान, और अभिनव बना देती है। जैसे—आसन—पश्चिमोत्तान उर्ध्व सर्वाङ्ग, शीर्षासन इत्यादि। मुद्रा = महा मुद्रा महा बन्ध—महावेध आदि आसन ही विशेष—फलप्रद होने से मुद्रा कहे जाते हैं। आसनों से मुद्राओं का विशेष महत्त्व है। मुद्रा आसनों से विशेष फलप्रद है। क्योंकि इसके साथ प्राणायाम उड्डियान जालन्धर और मूलबन्ध भी किया जाता है। मुद्राओं में महामुद्रा विशेष उपयोगी होने के कारण इस लेख से मैं उसी का अभ्यास साधकों को सिखाता हूँ। मुद्रा का अर्थ होता है—मुद = प्रीति आत्मानन्द रासि ददाति या सा मुद्रा और महान् आत्मानन्द और शरीर मन इन्द्रिय बुद्धि प्राण के पूर्ण स्वास्थ्य रूपी आनन्द का प्रदान करती है उसको महा मुद्रा कहते हैं। महा मुद्रा

कुण्डलिनी जाग्रति करा कर समाधि-सिद्धि करा देती है। और साधक को सिद्ध बना देती है। इस लिये योग शास्त्र में महामुद्रा का महान् महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। एक महामुद्रा साध लेने से सब योग सिद्ध हो जाता है। महामुद्रा के साथ महावेध भी अवश्य करना चाहिए महामुद्रा और महाबेध के साथ करने से कुण्डलिनी शीघ्र जाग्रत होती है। कुण्डलिनी जागरण के पश्चात् साधक कृत कृत्य हो जाता है। परम प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

महामुद्रा का स्वरूप—कम्बल बिछाकर समतल भूमि पर बैठ कर दोनों पैर सामने की ओर फैला दो। पुन: बाम पाद मोड़ कर उसकी एड़ी को गुदा और लिङ्ग के मध्य में जो रिक्त स्थान है उसमें दृढ़ता से लगा दो। पाद तल दाहिनी जंघा में चिपका दो फिर सोलह बार सूर्य चन्द्र क्रम से नाशा पुट से भसिका करो और दक्षिण नासा छिद्र से चार ओम जप का पूरा पूरक कर लो। सिर को घुटने पर लगाओ। फैले पैर को भूमि पर चिपका रहने दो। पेट को पीठ में लगाओ। प्राण वायु को अनाहत चक्र या जठराग्नि या मणिपूरक चक्र में रखो। नीचे से मूल बन्ध के द्वारा अपान वायु उठाकर प्राण वायु में मिलाओ। ठोढ़ी को कण्ठ कूप में लगाओ। सोलह ओम् जाप तक शिर घुटने में लगा रहने दो। फिर सीधे बैठकर बन्ध खोलो वायु का शनै: आठ ओम जप तक पूर्ण रेचन कर दो। पुन: उसी प्रकार वाम अङ्ग से करो वाम दक्षिण के क्रम से प्रथम पांच और फिर यथेष्ट शनै: शनै: बलानुसार बढ़ाकर सौ तक ले जाओ। कुम्भ के आदि भी उसी क्रम से बढ़ाया जा सकता है। सौ मुद्राएँ करने से फल प्राप्त होने लग जायेगा। दोनों अङ्गों से समान मुद्रा करना चाहिये जब संख्या हो तब मुद्रा बन्द करना चाहिए। दिन में चार बार महा मुद्रा का अभ्यास करना विहित है। महावेध पदमासन जमा कर बैठ जाओ कटि और सिर मेरुदण्ड सीधा रखो। दोनों हाथों की हथेली अँगुलियाँ दृढ़ता से मिला कर सिकोड़ लो। मुट्ठी सी बँध जायें। इसको करने से प्रथम भस्त्रिका प्राणायाम कर लो मूल उड्डियान और जालन्धर बन्ध लगा लो बँधी हुई दोनों हाथ की सम्मिलित मुट्ठियों को भूमि पर लगाओ और स्फिच भाग सहित सब आसन पृथ्वी से उठाकर फिर भूमि पर फिर जोर से मारो अपान प्राण बन्धों के द्वारा मिला रहे। इस भाँति एक बार में तीन बार या इससे अधिक बार भूमि पर स्फिच का आधात देकर जिस ओर से पूरक किया हो उसके दूसरी ओर वायु का रेचन करो। क्रम चार, सोलह और आठ हो इस प्रकार बलानुसार सौ तक कर सकते हो। जैसे दण्डा घात से सर्पिणी सीधी होकर फण उठाकर सीधी खड़ी हो जाती है। उसी प्रकार महावेध के अभ्यास से कुण्डलिनी सीधी होकर पश्चिम मार्ग से ब्रह्म रन्ध्र में चढ़ जाती है। साथ में प्राण वायु भी उसी मार्ग से ब्रह्म रन्ध्र में चढ़ जाता है और यथेष्ट समय तक निरुद्ध रहता

है। योग शास्त्र प्रदर्शित महा मुद्रा का फल गोरक्ष पद्धति श्लोक ६० से ६३ तक

नहिं पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपिनीरसाः।
अपिभुक्तं विषं घोरं पीयूषमिव जीर्यते।६०
क्षय कुष्ठ गुदावर्त गुल्मा जीर्ण पुरो गमाः।
रोगास्तस्य क्षयं यान्त महामुद्राञ्च योऽभ्यसेत।।६१
कथितेयं महा मुद्रा महा सिद्धि करी नृणाम्।
गोपनीया प्रयानेन न देया यस्य कस्य चित्।।६३।।

महामुद्रा के अभ्यासी के लिये पथ्य अपथ्य का पालन नहीं करना पड़ता। कटु अम्ल शिक्षा आदि सब रस उसके अनाययास पच जाते हैं। यहाँ तक कि भयंकर विष खा लेने पर भी वह अमृत की भाँति पच जाता है। महा मुद्रा के अभ्यासी की जठराग्नि इतनी अधिक सन्दीप्त हो जाती है कि उसके लिये पथ्य अपथ्य का बन्धन नहीं रह जाता। वह यथेष्ठ और सब कुछ खाकर अनायास पचा लेता है। उसकी जठराग्नि के सब रोग जल जाते हैं और वह पूर्ण आरोग्य अत्यन्त शक्तिशाली और स्वेच्छित सर्वकार्य करने में पूर्ण समर्थ हो जाता है। योग के सब ग्रन्थों में इसका अति प्रकार फल लिखा है। इसका फल ऋषियों के अनुभव अक्षरसः सत्य विदित हुआ है महा मुद्रा से संसार का महान् उपकार किया जा सकता है।

तुम्हारा अपना कर्म

जो कर्म स्वेच्छा व उत्साह से करते हो वह तो तुम्हारा है पर जो दूसरों की इच्छा व उत्साह से करते हो उसमें दूसरे का भी भाग रहता है।

—श्रुति सार

योग-आसन

पश्चिमोत्तानासन

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ, दोर्भ्यां पदा ग्रद्वितय गृहीत्वा।।
जानूपरि न्यस्त ललाटदेशो, बसेदिदं पश्चिमोत्तानमाहुः।।

अर्थात् अपने दोनों पैरों को लम्बे भूमि पर फैलाकर दोनों हाथों से फैले हुए दोनों पैरों के अंगूठों को इस प्रकार तनाव के साथ पकड़ें कि पैर सिकुड़ने न पायें। उसके बाद अपने मस्तक को दोनों घुटनों के बीच लगा दें। इसी को पश्चिमोत्तान आसन कहते हैं।

करने की विधि – अपने दोनों पैरों को लम्बे फैलाकर व अपने दोनों हाथों को ऊपर की ओर से तनाव के साथ लाकर अपने फैले हुए दोनों पैरों के अँगूठे को इस प्रकार खींचकर पकड़ें कि फैले हुए पैर सिकुड़ न सकें उससे अपना ललाट देश (शिर) दोनों घुटनों के बीच में लगा दें, इसी को पश्चिमोत्तान आसन कहते हैं।

अभ्यास का समय – अपने शरीर के बलाबल को देखकर आधे मिनट या 20 सैकेण्ड से प्रारम्भ करें व प्रतिदिन पाँच या सात सैकण्ड बढ़ाते चले जायें और दो मिनट तक ले जायें। परमार्थ दृष्टि से करने वाले जिज्ञासु साधु लोग अभ्यास बढ़ाकर इसे आधा घण्टा व घण्टा तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ –

इति पश्चिमोत्तानासनाग्रय, पवनं पश्चिम वाहिनं करोति।
उदयं जठरानलस्य कुर्यादुदरे, कार्श्यमरोगतां च पुंसाम्।।

अर्थात् यह उत्तमोत्तम पश्चिमोत्तान वायु को पश्चिमवाही करके जठराग्नि को बढ़ाता है, और पेट पतला करता है। पहिले जानुशिरासन में बतलाये लाभ इस आसन के अभ्यास से प्रायः सभी ही प्राप्त होते हैं। वायु को पश्चिमवाही करना कुण्डलनी जागृति का कारण बनता है। स्नायु मण्डल कोमल होकर उत्तमोत्तम रस रक्त का वहन करता है।

❀❀❀

अमृतकण

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।।

सत्ययुग में विष्णु के ध्यान से, त्रेता युग में यज्ञों से, द्वापर में विधिपूर्वक पूजा करने से जो फल मिलता था, वही फल कलियुग में भगवान के नाम–कीर्तन से मिलता है।

• • •

अहोरात्रं हरेर्नाम कीर्तयन्ति च ये नराः।
कुर्वन्ति हरिपूजां या न कलिर्बाधते च तान्।।

जो मनुष्य दिन– रात भगवान के नाम का अखण्ड कीर्तन या सानन्द हरि पूजा करते हैं, उन्हें कलिकाल बाधा नहीं पहुँचाता।

• • •

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।।

(गीता 11/54)

अर्जुन ! मेरे इस प्रकार के स्वरूप को अनन्य भक्ति से मुमुक्षु पुरुष यथार्थतः जान सकते हैं, देख सकते है तथा मेरे स्वरूप में अवस्थित भी रह सकते हैं।

• • •

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता
घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः।
संकीर्त्य नारायण शब्द मात्रं
विमुक्तदुःखा सुखिनो भवन्ति।।

आर्त, उदास, शिथिल, तथा भयभीत एवं भयंकर विपत्ति में पड़े हुए प्राणी भी केवल " नारायण " शब्द का संकीर्तन करके सभी दुःखों से छूटकर सुखी हो जाते हैं।

• • •

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20 **JUNE 2018**

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उत्कृष्ट का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

□□□□□□

कनकमपि रहस्यवेक्ष्य बुद्धया तृणमिव यः समवैति वै परस्वम्।
भवति च भगवत्यनन्यचेताः पुरुषवरं तमवेहि विष्णुभक्तम्।।

जो एकान्त में पड़े हुए दूसरे के स्वर्ण को देखकर भी उसे अपनी बुद्धि के द्वारा तृण के समान समझता है और निरन्तर भगवान् का अनन्य भाव से चिन्तन करता है उस पर श्रेष्ठ को तुम विष्णु का भक्त जानो।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दयालाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य प्र. (डॉ.) दयालाल शर्मा